भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मंदिरके संरक्षक

(१) श्रीमती राजो देवी जैन ध० प० स्व० श्री जुगमंदरदासजी जैन आढ़ती, सरधना

(२) श्रीमती सरलादेवी जैन ध० प० श्री ओमप्रकाश जी दिनेश वस्त्र फैक्टरी, सरधना

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ

(२) श्रीमती फूलमाला देवी, ध० प० ला० महावीरप्रसादजी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ

(३) श्रीमान् ला० लालचन्द विजयकुमार सर्राफ, सहारनपुर

(४) श्रीमती शशिकान्ता जैन ध० प० श्री धनपालसिंह जी सर्राफ, सोनीपत

(५) श्रीमती सुवटी देवी जैन, सरावगी गिरीडीह

(६) श्रीमती जमना देवी जैन ध० प० श्री भंवरीलाल जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया

नवीन स्वीकृत संरक्षक

(७) श्रीमती रहती देवी जैन ध० प० श्री विमलप्रसादजी जैन, मंसूरपुर

(८) श्रीमती श्रीमती जैन ध० प० श्रीनेमिचंदजी जैन, मुजफ्फरनगर

(९) श्रीमान् शिखरचंद जियालाल जी एडवोकेट, ,,

(१०) श्रीमान् चिरंजीलाल फूलचंद बैजनाथजी जैन बड़जात्या नई मंडी, ,,

(११) श्रीमती पूना बाई ध० प० स्व० श्री दीपचन्द जी जैन गोटेगांव

सहजानन्द–साहित्य–उद्घोष

वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है। अतः स्याद्वाद द्वारा समस्त विवाद विरोध समाप्त कर वस्तुका पूर्ण परिचय कीजिए और आत्मकल्याणके अनुरूप नयोको गौण मुख्य करके अभेदपद्धतिके मार्गसे आत्मलाभ लीजिए।

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी।

जय, जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॐ··· ॥ टेक ॥

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥ १ ॥ ॐ····

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥ २ ॥ ॐ····

परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी।
परमब्रह्म का दर्शन, चहु गति दुखहारी ॥ ३ ॥ ॐ···

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥ ४ ॥ ॐ····

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥ ५ ॥ ॐ···

नोट—यह आरती निम्नांकित अवसरोंपर पढी जाती है—

१– मन्दिर आदिमे आरती करनेके समय।
२– पूजा, विधान, जाप, पाठ, उद्घाटन आदि मंगल कार्योंमे।
३– किसी भी समय भक्ति-उमंगमे टेकका व किसी छदका पाठ।
४– सभाओंमे बोलकर या बुलवाकर मंगलाचरण करना।
५– यात्रा वंदनामे प्रभुस्मरणसहित पाठ करते जाना।

卐卐卐 卐
卐 卐
卐卐卐卐卐
卐 卐
卐 卐卐卐

※ आत्म-कीर्तन ※

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।। टेक ।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।। १ ।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।। २ ।।

सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।। ३ ।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।। ४ ।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरोपर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमे अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोके बीचमे श्रोतावो द्वारा सामूहिक रूपमे ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रो द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमे एकत्रित बालक-बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा ।
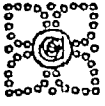
सूत्रपाहुड प्रवचन
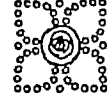
प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गथिय सम्म ।
सुत्तत्थमगाणत्थं सवणा साहति परमत्थ ।। १ ।।

(१) **आगमकी अर्हद्भाषितता**—यह कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित सूत्र पाहुड नामका ग्रन्थ है। इसमे सूत्र अर्थात् आगमके सबधमे वर्णन किया गया है, क्योकि तीर्थप्रवृत्तिका आधार आगम होता है। जैसा कि अनेक प्रत्येक मतोमे उनके माने हुए शास्त्र उनकी विधियो का आधार है। तो ऐसे ही मोक्षमार्गमे लगनेके लिए जो ज्ञान आवश्यक है उस ज्ञानका आधार आगम है। उस आगमका इस पाहुडमे वर्णन चलेगा। सर्वप्रथम लगता है कि जो अरहत देव कह गए, जिसका अर्थ अरहतके द्वारा भाषित है। प्रभु एक-एक शब्द बोलकर कुछ वाक्य नही बोला करते हैं। उनके तो दिव्यध्वनि खिरती है। पहले जो आगमका ज्ञान था, द्वादशाङ्गका बोध था उसका स्पष्ट अभ्यास था मुनि अवस्थामे वह सब अब यहाँ दिव्यध्वनिके रूपमे प्रकट हुआ। द्वादशागका ज्ञान बताया तो यो है कि किसी मुनिके न भी हो तो भी केवलज्ञान हो जाता है, किन्तु सूक्ष्मतासे हम ऐसा समझते हैं कि श्रुत ज्ञानावरणका क्षयोपशम बढ़ता ही जाता है जैसा कि वह गुणस्थानोमे बढता है और १२ वें गुणस्थानमे श्रुत ज्ञानावरणका क्षय हो जाता है। अन्तमे उस क्षय होनेसे पहले और क्षयोपशम बढे हुए की स्थितिमे, लब्धिमे, योग्यतामे द्वादशाङ्गका सभीको बोध हो जाता होगा, किन्तु उसका व्यवहार नहीं बनता, क्योकि वह कुछ ही समयकी बात है। इसलिए उनका द्वादशाङ्ग प्रसिद्ध नही है और न द्वादशाङ्गके ज्ञातापनेका सबमे व्यवहार होता है। तो जो भी अरहंत

हुए हैं और जिनकी दिव्यध्वनि खिरती है सबकी दिव्यध्वनिमे द्वादशाङ्गकी रचना बनती है। प्रभु तो केवल दिव्यध्वनि ही करते हैं। करते भी क्या हैं ? भव्य जीवोके भाग्यके उदय से और प्रभुके वचनयोगके निमित्तसे दिव्यध्वनि बनती है। जैसे मेघ कुछ कल्पना नही कर पाते, न करते है, न कर सकते है किन्तु जहांके जीवोका भाग्य होता है यथोचित वहां बरस जाते हैं, वही पहुच जाते है, और इसी प्रकार उनकी गर्जना भी बिना कल्पनाके होती है। तो अरहत भगवानके सर्वाङ्गसे एक ध्वनि होती है समयपर उस ध्वनिको जो लोग सुनते हैं वे अपनी बुद्धिके माफिक अपनी शकाका समाधान करते हैं और अर्थ समझते हैं। दिव्यध्वनिसे सभी लोग पूरा समझें ऐसा नही होता। जिसकी जितनी योग्यता है वह उतना समझता है, पर गणधरदेव उस दिव्यध्वनिसे पूरा द्वादशागका अर्थ समझते हैं।

(२) दिव्यध्वनिकी निरक्षरतापर विचार—दिव्यध्वनिके सम्बन्धमे दो बातें आती है। एक मतसे तो वह निरक्षरी भाषा है, उसमे कोई अक्षर नही, किन्तु मेघ गर्जनावत् ॐ ध्वनि रूप है और एक मतसे सर्व अक्षरो रूप ध्वनि है अथवा जो विशिष्ट अनेक सयोगी अक्षर वाले मत्र हैं। एक एक स्वर वाले, उस रूपसे ध्वनि बनती है जैसे ॐ, ह्री आदि। तो उन दोनो सिद्धान्तोंसे एक बात यह स्पष्ट होती है कि वह भाषा निरक्षरी है अथवा सर्वाक्षरी है, पर मोटे रूपसे विचार करें तो जो सर्वाक्षरी हो वह निरक्षरी ही कहलाता है। अगर रागी पुरुषोकी भाँति अलग-अलग अक्षर बोले जाते हो तब तो उसका व्यवहार बनता है और जहां सभी अक्षर एक साथ बोले हो, वहां कोई अक्षर न रहा और इसी कारण निरक्षरी शब्दके दो अर्थ किए जा सकते हैं। निर मायने रहित अर्थात् अक्षर रहित अथवा निर मायने समस्त। सधि होते समय स से र होता है, निर शब्द है और निरक्षर बनता है मायने समस्त अक्षरो सहित, निरक्षर शब्दके दो अर्थ हैं— (१) अक्षर रहित और (२) सर्व अक्षरोसे सहित, ऐसी दिव्यध्वनि अरहत प्रभुके सर्वांगसे प्रकट होती है। जहां सर्वांगसे प्रकट हुई तो क्या मुख खाली रहेगा ? अरे मुखसे भी प्रकट हुई और मनुष्योके तो मुखसे ही निकलती है भाषा अतएव यह भी लिखा गया है कि भगवानके मुखसे निकली हुई भाषा, वह है दिव्यध्वनि।

(३) द्वादशाङ्गकी गणधर ग्रन्थितता—प्रभुके द्वारा जो दिव्यध्वनि हुई उसको गणधरदेवने भले प्रकार ग्रन्थमे गूँथा। तो आज जो आगम है वह सब आगम मूलमे तो तीर्थंकर प्रभुसे निकला हुआ है। उसे गणधरदेवने लिया, गूँथा, गणधर देवसे आचार्योंने लिया और मौखिक बात चल रही, उनसे फिर अन्य आचार्योंने लिया। जब लिपि करना आवश्यक हुआ तो आचार्योंने लिपि की और उस परम्परासे आज भी आगम चला आ रहा है। तो इस

आगमके मूल कर्ता तीर्थंकर परमदेव, अरहंतदेव है, उत्तर कर्ता गणधरदेव हैं। उसके बाद उत्तरोत्तर कर्ता अनेक आचार्य हुए है।

(४) अनुभव व आगमकी समानताका उदाहरण पूर्वक समर्थन—

आज भी अगर परखते हैं ७ तत्त्वोके विषयमे, तो जो अनुभवमे उतरता है, वही आगम मे मिलता है, जो आगम मे लिखा है वही अनुभव मे आ रहा है, बिल्कुल सही मिल जाता है। जैसे—जीव क्या है ? एक चैतन्यमूर्ति, चैतन्यमात्र, जिसका स्वरूप प्रतिभासन है, और कुछ स्वरूप नही है, कल्पना रागद्वेष ये स्वरूप नही है, यह तो उपाधिके सान्निध्यसे विकार प्रतिफलित हुआ है। जैसे कोई पूछे कि बताओ दर्पणका असली स्वरूप क्या है ? तो दर्पणका स्वरूप है झलझलाहट, चकचकाहट और उसमे जो फोटो आ रहा है, क्या वह दर्पणका स्वरूप है ? दर्पणका स्वरूप नही, किन्तु वह ऐसा ही झलझलाहट वाला पदार्थ है कि जिस उपाधिके उपस्थित होनेपर उसके अनुरूप अपनेमे विकार कर लेता है। विकार एक विकृत कला तो है पर दर्पणका स्वरूप नही है, ऐसे ही जो विकार जगते हैं वे आत्माकी विकृत कलायें तो है किन्तु आत्माका स्वरूप नही है। जो आगममें बताया है स्वरूपतः पदार्थ अविकार होता है। अनुभव करने पर वह सही जँचा। आगममे बताया है कि कर्मविपाकका निमित्त पाकर वे विकार हुआ करते हैं। युक्ति ने यह बात सिद्ध कर दी कि उपाधिका सान्निध्य हुए बिना एक पदार्थमे विकार आ ही नही सकते और इसी कारण ये मिट सकते है। विकार यदि औपाधिक न हो तो ये कभी मिट भी न सकेंगे, क्योकि वे तो पदार्थमे स्वभावत. हुए हैं, मिटनेका कोई उपाय ही नही, सामने भी देखते हैं कि दर्पणके सामने हाथ आया तो हाथका प्रतिबिम्ब दर्पणमे आ गया, हाथ हटाया कि दर्पणमे से प्रतिबिम्ब हट गया। यद्यपि हाथ कई हाथ दूर है और उस हाथकी गति दर्पण तक नही है। हाथ बहुत दूर, दर्पण बहुत दूर हाथने फोटो बनाया भी नही है। हाथ तो सामने हाजिर भर है और वह कुछ करता है तो अपनेमे अपना ही काम करता है, दर्पणमे कुछ नही करने जाता मगर निमित्त नैमित्तिक योग तो देखो कितना स्पष्ट विदित हो रहा है कि उस हाथका सामने सन्निधान पाकर दर्पणमे उस प्रकारका फोटो आया, वह फोटो औपाधिक है। दर्पणका स्वभाव नही है, दर्पणका चू कि स्वभाव नही है इस कारण वह फोटो नष्ट हो जाता है। विलीन हो जाता है। हट जाता है। अब दर्पणमे ही अगर किसीमे खोट हो, जैसे कोई कोई दर्पण भीतरमे कोई बिन्दु वाला है वे दर्पणके ही बिन्दु हैं, उस कांचमे ही कुछ ऐसी भीतरमे खराबी आयी कि वह बिन्दु सा हो गया, कुछ उठा सा लग रहा, उसे तो कोई मिटाये तो वह मिटता ही नही। तो ऐसा आत्मामे नही है कि आत्माके ही स्वरूपके

कारण कोई आत्मामे खोट आ जाय। वैसे तो दर्पण कोई पदार्थ नही है। दर्पण तो पर्याय है, पदार्थ तो पुद्गल परमाणु है। अनेक पुद्गल परमाणुका मिलकर यह दृश्यमान पदार्थ बनता है। तो दर्पण भी द्रव्य नही है। अकेला द्रव्य परमाणु है तो वहाँ भी आकार विकार नही है, पर इतना फर्क है कि चूकि परमाणुओका बध किसी परपदार्थका निमित्त पाकर नही होता, किन्तु परमाणुओमे ही जो स्निग्ध रूक्ष गुण हैं उनकी ही घटावढीसे होता है, इस कारण परमाणु एक बार शुद्ध होनेके बाद भी अशुद्ध हो सकता है, किन्तु जीवके विकार का निमित्त बाह्यपदार्थ ही है, स्वयं नही है। स्वयका स्वयंमे होने वाला परिणमन तो विकारका कारण नही बनता वह तो स्वाभाविक परिणमन है, इस कारण जीवमे यह स्थिति नही आ पाती कि एक बार शुद्ध होकर फिर अशुद्ध हो सके। प्रयोजन यहा यह है कि जीव चैतन्यमात्र है, उसमे विकार नही है, चैतन्य ही मेरा स्वरूप है, यह बात अनुभवमे भी आती है, युक्ति भी बता रही है। यह ही आगममे लिखा है। तो जो हमारे कामकी बातें है, जो हमारे अनुभवमे आ सकती हैं वे बातें जब आगमसे बिल्कुल ठीक मिलती है तो आगमकी प्रामाणिकता अपने अनुभव बलसे भी हो गई। अब जो ऐसे वीतराग आत्मकल्याण मे लगे हुए ऋषि संत है वे किसी असत्य बातको लिखना ही क्यो चाहेंगे ? उनकी कोई खुदगर्जी नही है। तो ऐसे अरहंत भगवानके मूलसे चला आया हुआ आगम सूत्र कहलाता है। इसको गणधर देवोने भली प्रकार गूथा और इस आगमके सहारे श्रमण, साधुजन, आत्महिताभिलाषी भव्य प्राणी अर्थकी खोज करते हैं, तथ्यकी खोज करते हैं, क्योकि सूत्रकी रचना—आगमकी रचना केवल तत्त्वकी खोजके लिए है, तो सूत्रके अर्थकी खोजके लिए साधु पुरुष अपने परमार्थकी सिद्धि करते हैं और उससे आगे बढकर मोक्ष की सिद्धि करते हैं। मनुष्योको देव, शास्त्र, गुरुमे अटल श्रद्धा हो तो उस श्रद्धाके आधारपर उसके जीवनमे अलौकिक तथ्यका दर्शन हो सकता है, किन्तु जिस पुरुषकी आदत स्वच्छद है और जरा भी समझमे कोई तत्त्व न आया तो झट यह कहनेको उद्यमी हो जाते हैं कि यह तो गलत है या उनमेसे एक ही अर्थका एकान्त कर लेते हैं, ऐसे पुरुष अपने जीवनमे आत्म-साधना नही बना पाते।

(५) **ग्रन्थकी मंगलरूपता**—यह ग्रन्थ अरहतदेवने भाषा है। गणधरदेवने गूथा है और साधुजनोने उसकी साधना बनाया है। इसकी प्रथम गाथामें स्वय मगलाचरण बन गया। मगलाचरण कोई स्पष्ट शब्दोमे होता है और कोई तत्त्वदर्शनके रूपमे होता है। ये शास्त्र जिन के आधारसे हम अपना कल्याण करते हैं ये शास्त्र मूलमे अरहत भगवानसे प्रकट हुए। उन की महिमा चित्तमे समायी है, यह ही नमस्कार है। इस विशेषणसे यह भी सिद्ध किया गया

कि जो वीतराग सर्वज्ञदेव नही हैं ऐसे पुरुषोके द्वारा जो ग्रन्थरचना हुई हो, जिसको दर्शनका रूप दिया गया हो वह दर्शन यथार्थ तत्त्वका प्रतिपादक नही है उनके अभ्याससे, उनकी साधना से परमार्थकी सिद्धि नही होती, क्योकि छद्मस्थ पुरुष पदार्थका स्पष्ट ज्ञान नही कर पाते। तो जो समझमे आया, जितना ही ध्यानमे आया उतना ही उन्होने एकान्त करके लिखा।

(६) **पदार्थकी द्रव्यपर्यायात्मकता होनेसे अनेकान्तमयता**—जैसे जीव तत्त्वके बारेमें खूब खोज कर लीजिए, जीव सदा रहने वाला है या नही? कमसे कम इतना तो सब अनुभव कर रहे है कि जिनकी उमर ६०-७० वर्षकी है वे जान रहे होगे कि ६०-७० वर्ष पहलेसे मैं वहीका वही जीव हूं और वही रहूगा। तो एक भवमे तो सभी लोग यह अनुभव किए बैठे है कि मैं वहीका वही एक हू, तो जैसे एक भवका निर्णय बना हुआ है कि मै वहीका वही एक हूं ऐसे ही यह इस भवको छोड़कर अगले भवके शरीरमे जायगा वहाँ भी यह ही जीव है और यह जीव अनादिसे है, अनन्त काल तक है। जो कुछ नही वह प्रकट कैसे हो जायगा? घडा भी बना तो मिट्टी थी तो घड़ा रूपमे प्रकट हुआ, वह अवस्था बनी, तो यह जीव अनादिसे है और अनन्त काल तक रहेगा, इस कारण यह नित्य है, किन्तु एक ध्यान और दीजिए कि इस जीवमे भाव अवस्थायें नई नई आती रहती हैं या नही। गुणमे भी फर्क आया इस मनुष्य को। बचपनमे किस ढगकी आदत थी, किस ढगके विचार थे, किस ढंगकी आदत थी, किस ढगकी फुर्ती थी और अब आज बडी अवस्था होनेपर किस ढगके भाव है, कैसी गम्भीरता है, इस बातमे फर्क है कि नही?… है।… तो ऐसे ही इस जीवमे भावोका नया-नया होना होता ही रहता है। तो चूंकि भाव नये नये होते, पर्यायें नई-नई प्रकट होती है, बदलती रहती है इस कारण यह जीव अनित्य है। पर्यायदृष्टिसे जीव अनित्य है, द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य है। अब इस अनेकान्तको स्वीकार न कर जो लोग केवल एक ही धर्मकी हठ कर लेते कि जीव तो अनित्य ही है, ऐसा अनित्य है कि पूर्ण अनित्य है। एक क्षणको ही पैदा हुआ और मिट गया, उसका लगार ही नही रहता, उसका अस्तित्व ही नही रहता, वे नये-नये जीव आते रहते है। तो ऐसा तो किसीके अनुभवमे नही है। जो बात सालभर पहलेकी थी या किसीको मानो कुछ द्रव्य (धन) उधार दिया था और वह आज उसका स्मरण करता है कि मुझे इससे इतना लेना है तो वहीका वही जीव है तब ही तो स्मरण हो रहा। अगर नया-नया जीव आये तो आपके द्वारा दिए गएका स्मरण दूसरा कौन करेगा? आपके दिए हुएको हम तो स्मरण नही कर पाते। तो जीव एक है किन्तु अवस्थायें हो रही है इसलिए अनेक हैं अथवा सामान्य दृष्टि से सभी जीव एक समान हैं इस कारण एक है और अनुभव सबके जुदे-जुदे हैं इस कारणसे अनेक हैं। तो ऐसे अनेकान्तसे पदार्थकी सिद्धि होती है और प्रभुका आगम स्याद्वादसे चिन्हित

है। स्याद्वादसे सबका अर्थ लगाओ। अब रही आत्मकल्याणकी बात सो उसमे से जिस दृष्टि की मुख्यतासे निर्विकल्पता आती हो उस दृष्टिको मुख्य करके साधना बनावें।

(७) **विशाल द्वादशाङ्गके कणके स्वाध्यायका भी महत्त्व**—यह आगम अरहत भगवानके द्वारा भाषित अर्थ वाला है। गणधरदेवने इमको १२ अगोमे गूथा है। १२ अगो का बहुत बडा प्रमाण है। और उसमे इतने सयोगी अक्षर है कि जितने अक्षर हैं उन सबका सयोग कर लिया जाय, जैसे हम आपके बोलचालमे कोई ३-४ सयोगी अक्षर हो पाते है, जैसे कहा कृष्ण तो सयोगमे कृष्ण ये अक्षर आ पाये, फिर कहा कृत्स्न तो उसमे कृत्स्न ये ४ अक्षर आये, लेकिन वहाँ तो ६४ अक्षरोका एक-एक सयोग है। भिन्न भिन्न अक्षर ६४ माने गए हैं, प्रसिद्ध तो १६ स्वर है और ३२ व्यञ्जन हैं और इनके अलावा जिह्वामूलीय उपदमानीय आदि ऐसे और भी होते है जिनका आजकल कोई प्रचार नही है। उर्दू मे कितने ही अक्षरोके नीचे बिन्दु लगाया जाता जैसे सरीफ, रफी, फर्क आदि, तो ऐसे भी कुछ चिन्ह हैं जो जिह्वामूलीय कहलाते हैं, उपदमानीय कहलाते है। क ख के प्रयोगमे जीभकी जडमे कुछ प्रयत्न होता है। प फ और प फ के बोलनेमे भी कुछ ओठोके भीतर यत्न होता है, तो ऐसी ऐसी धातुवों ये सब ६४ अक्षर कहलाते है। तो कोई कोई सयोगी ६४ अक्षरोका बनता है। कैसे क्या होता है यह अपने बोलनेमे नही आ सकता इसलिए द्वादशाङ्ग वाणी ग्रन्थोमे बद्ध नही हो पाती। वह तो एक सकेत या बोलनेमे आ पाती है। बोलनेमे भी सुनने वालेको अव्यक्त और उसीके जानने वालेको स्पष्ट रहता है। कितनी ही भाषायें पक्षी बोला करते हैं और कितनी तरहसे बोलते हैं उनमे क्या क्या अक्षर हैं इसे हम आप नही पहिचान सकते। फिर वहाँ तो केवल ज्ञानके साथ ध्वनि है। तो ऐसा महान विशाल सूत्र अर्थ द्वादशाङ्ग, इसके मूलकर्ता अरहंत देव, उत्तरकर्ता गणधर देव और उत्तरोत्तर कर्ता आचार्य देव होते होते चले आये हैं। उन सूत्रोका अभ्यास करें इस प्रयोजनसे कि इसमे क्या तत्त्व भरा है, क्या तत्त्व कहा गया है। उस तत्त्वपर उपयोग जाय और अपने आपमे अपने हितको दृष्टिसे मनन किया जाय। यह ही आगमके अभ्यासका प्रयोजन है कि जिस किसी भी प्रकार हो, मेरेको सहज अविकार चैतन्य मात्र अतस्तत्त्वका अनुभव बने।

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरपरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्त वट्टई सिवमग्ग जो भव्वो ॥ २ ॥

(८) **अरहंत भाषित गणपतिग्रन्थित आगमका हिततथ्य जानकर उसमें प्रयत्नशील की मोक्षमार्गवर्तना**—अरहत भगवानने जो दिव्यध्वनि द्वारा भाषित किया है और गणधर

देवने उसे गूंथा है ऐसा दो प्रकारका सूत्र मायने आगम; उसको जानकर जो मनुष्य आत्मानुसारणी प्रवृत्ति करता है वह भव्य मोक्षमार्गमे स्थित है। जो आज आगम है वह भी अरहंत देवके द्वारा भाषित है। गणधर देवके द्वारा गूथा गया है। आचार्य-परम्परासे यही चला आया है। ऐसे दो प्रकारके आगम जो भव्य पढते है वे मोक्षमार्गमे स्थित है। कौनसे हैं वे दो प्रकार ? अंगबाह्य और अगप्रविष्ट। अग होते है १२ और उन १२ अंगोसे भी कुछ बचा हुआ है आगम। उसे बोलते है अग बाह्य। जो अगोमे है वह तो है अग और जो अगसे बहिर्भूत है वह है अग बाह्य। अगप्रवृविष्ट और अगबाह्यका मतलब क्या ? ये सब उनके नाम आयेंगे, उनके नामोसे विदित होता जायगा। इस गाथाके यहाँ कहनेकी आवश्यकता क्या हुई कि पहली गाथामे यह बताया था कि साधुजन परमार्थ की सिद्धि करते हैं उस आगमके अध्ययनसे। तो एक यह जिज्ञासा हुई कि इस पचमकालमे भी क्या परमार्थकी सिद्धि करने वाले लोग है, क्योंकि गणधरदेवका गूंथा गया जो द्वादशाङ्ग है वह इस समय उपलब्ध नही है। भले ही कुछ लोगोने छोटी-छोटी पुस्तकोपर नाम रख दिया यह आचाराङ्ग है, यह सूत्रकृताङ्ग है, यह अमुक अग है, मगर अंगका तो इतना विशाल वर्णन है और इस रूपमे है कि वह तो लिखा ही नही जा सकता। उन अगोमे जो विपय है वह विषय कुछ आचार्योंने बताया है, पर ये सब आचार्य प्रणीत ग्रन्थ है। द्वादशाङ्ग नही हैं। पहले समयमे भी द्वादशाग लिखितरूपमे न था, मौखिक था। वह लिखा हो नहीं जा सकता आजकल तो मौखिक भी नही है। जब द्वादशांग नही है तो मोक्षमार्ग कैसे सधेगा ? उसके समाधानमे यह गाथा दी है कि अरहतदेवके द्वारा भापित और गणधर देवके द्वारा गूथे गए उस द्वादशाग आगममे जो मनोबल विशेप होनेसे, वचन बल विशेष होनेसे मुखजबानी कहा जाता था वह नही है मगर उसका कुछ विषय आचार्यपरम्परामे करके जाननेमे तो आ रहा है। जो आज ग्रन्थोमे उपलब्ध हो रहा है वह उस द्वादशागका कण विन्दु है। उसे जानकर जो मोक्षमार्ग साधता है वह मोक्षका रास्ता बना रहा है। भले ही वह इस भवसे मोक्ष न जायगा मगर सस्कार तो बना रहा है।

(६) इस पञ्चमकालमे प्रारम्भमे केवलिपरम्पराका दिग्दर्शन—अब इस जगह आचार्य परम्पराकी बात सुनो। वर्द्धमान भगवान जिस समय थे उस समय तो साक्षात् धर्मप्रवृत्ति चल ही रही थी। वहाँ तो परम्पराका सवाल ही क्या ? उनके मोक्ष गए पीछे तीन केवली हुए है। वे तीनो ही केवली चौथे कालमे तो उत्पन्न हुए थे और पंचम कालमे केवलज्ञानी हुए है और ये तीन केवली परम्परासे हुए है। जैसे भगवान महावीरसे सम्बन्ध था गौतमका तो परम्परामे कहलाये वे केवली गौतम गणधर। और फिर गौतम गणधरके बाद

उस परम्परामे सुधर्म गणधर हुए और सुधर्मके बाद जम्बूस्वामी केवली हुए। ये तीन तो परम्परासे केवली हुए, पर यह न जानें कि सिर्फ तीन ही केवली हुए। इसके अलावा और भी केवली हुए। चौथे कालमे उत्पन्न हुए, पचमकालमे केवलज्ञानी बने, ऐसे और भी हैं, किन्तु उस परम्परामे नही हो पाये। ये हो गए। वर्द्धमान भगवानके बाद तुरन्त गौतम हुए उनके बाद दूसरे सुधर्माचार्य हुए, उनके बाद जम्बू स्वामी हुए। वे अलग-अलग स्थानपर भिन्न-भिन्न समयमे केवलज्ञानी हुए हैं जो इन तीनमे नही हैं, पर तीनकी बात चली क्यो कि यहाँ परम्परा दिखानेका कथन है। इसके बाद केवलज्ञानी नही हुए।

(१०) **पञ्चमकालमे केवलिपरम्परा समाप्त होनेके बाद हुए पांच श्रुतकेवलीका निर्देश**—तीन परम्पराके केवलज्ञानी होनेके बाद ५ श्रुतकेवली हुए जो द्वादशांगके पूर्ण ज्ञाता थे। पहले का नाम विष्णु द्वादशांगके ज्ञानी, दूसरे हुए नन्दि मित्र, समस्त द्वादशांगके ज्ञानी जहाँ द्वादशागके ज्ञाता कहा वहाँ अग बाह्यके ज्ञाता ले ही लेना। यद्यपि अग बाह्य द्वादशांग से थोडा अलग है फिर भी इसे लेना। अलग होनेका कारण यह है कि जैसे कोई कुछ रुपये गिन रहा, मान लो ७२५ चाहिए तो ७ तो १००—१०० के नोट हो गए और २५ अलग हो गए जो १०० पूरे नही हैं तो वह कहलाया फुटकर ऐसा फुटकर शब्द लोग बोलते भी हैं, तो वे फुटकर रुपये गड्डीसे बाहर हो गए ऐसे ही इसका पद होता है। और एक पदमे लाखो करोडो अक्षर हो जाते है, इस पदके मायने हमारा विभक्त वाला पद नही किन्तु उस के हिसाबसे ६४ अक्षर अलग और २ संयोगी, ३ सयोगी, ४ संयोगी फिर वे भी भिन्न-भिन्न सयोगी, ऐसे ६४ तक सयोगी और वे भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे तो ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकारसे सब अक्षर आ जाये इतने को एक पद कहते हैं। तो द्वादशांगमे पद आ गया मगर पदसे जो कम अक्षर रह गए वे अग बाह्य हो गए। तो जैसे किसी ने दान किया ७०० रु० का तो उसमे १ रु० और भी शामिल समझकर ७०१ रु० का दान कर देता है, पर उस १ रु० को अलगसे कोई नही बोलता। उसे तो यो कहा जाता कि उसने ७०० का दान किया तो ऐसे ही जो लाखो करोडोकी सख्या वाले पूरे पदोमे आये वह तो है द्वादशाङ्ग और जो पदसे कम रह गए सो वे हो गए अग बाह्य। अब अगबाह्य भी इतना विशाल है कि उसका ही जीवनमे अध्ययन नही हो सकता। तो द्वादशाङ्गका तो कहना ही क्या है। तो समस्त द्वादशाङ्गके ज्ञाता श्रुतकेवली कहलाते है। न्यायशास्त्रमे बताया है कि केवलज्ञानी और श्रुत केवली दोनो बराबरके ज्ञानी है, पर फर्क यह है कि केवलज्ञानी तो प्रत्यक्ष समस्त लोकालोक को जानता है और श्रुत ज्ञानी श्रुत ज्ञानके बलसे सारे लोकालोकको जानता है। जैसे कोई श्रमण बेलगोल हो आया, तो वह साक्षात् देख आया, पहाडी, बाहुबलिकी प्रतिमा, नीचेके मदिर

लोगोंका मिलना और एक कोई यहाँ ही बैठे बैठे पुस्तकसे या किसीसे सुनकर श्रमण बेलगोल के सम्बधकी पूरी जानकारी सही सही कर ले तो जाना तो उसने वैसा ही जैसा कि वहाँ पर जाकर आँखोंसे देखने वालेने जाना, पर इन दोनों प्रकारके ज्ञानोमे अन्तर है, तो ऐसे ही केवल ज्ञानी तो तीन लोक तीन कालकी बात स्पष्ट जानता है और श्रुतज्ञानी तीन लोक तीन कालका सब कुछ श्रुतज्ञानके द्वारा जानते है। प्रथम श्रुतकेवलीके बाद दूसरे श्रुतकेवली हुए नंदिमित्र। तीसरे श्रुतकेवलीका नाम है अपराजित चौथे श्रुतकेवली हुए गोबर्द्धन, और ५वें हुए भद्रबाहु।

(११) **पञ्चम श्रुतकेवलीके समय हुए प्राकृतिक संघर्षका प्रभाव**—अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु हुए, इसलिए उनका नाम शास्त्रोमे बहुत आता है। भद्रबाहु श्रुतकेवलीके समयमे ही करीब समझ लो १२ वर्षका अकाल पडा था तो उस समय तक सब साधु निरारम्भ, निर्ग्रन्थ, निर्वस्त्र थे। उस अकालमे साधुवोंको बडी बडी मुसीबतें आयी। चर्याको निकले तो बडा कठिन हो गया, अनेक भूखे लोग उनके साथ लग जाते थे और यहाँ तक सुना गया कि भरपेट भोजन किया हुआ पुरुष कोई मिले तो उसका पेट फाडकर पेटके अन्दरका अन्न निकाल कर खा जाते थे, ऐसा भीषण काल था। उस समय साधुवोकी बडी शोचनीय स्थिति हुई। तो कुछ साधुवोने तो ऐसा विवेक किया कि जब यहाँका क्षेत्र साधुवो के रहनेके काबिल न रहा तो चलो दक्षिण भारत चलें, उत्तर भारतमे अकाल था तो दक्षिण मे चले गए। कुछ साधु इस उत्तर भारतमे रह गए, पर असुविधायें सामने आयी तो कुछ श्रावकोने बिनती की कुछ उनको ही ऐसा जचा तो एक जगहसे बात न बन सकी अकालके दिनोमे सो ८—१० जगहोसे लेकर साधुजन भोजन करें। सोचा कि इसमे किसीको दिक्कत भी न पडेगी, जिस जगहसे जो भोजन मिला उसे रखते गए, ७–८ जगहोसे ले ले आये, अगर रास्तेमे दूसरोके द्वारा भोजन छीन लिए जानेकी बात देखा तो उसे कपड़ेमे लपेटकर लाने लगे। अब उस समय दिनमे आहार चर्याके लिए जाना कठिन हो गया तो यह विचार किया कि कुछ गोधूलका समय हो याने कुछ अधेरा उजेला सा हो, सायंकाल अथवा प्रात.कालका गोधूलका समय हो जिसमे लोगोका आवागमन भी कम हो ऐसे समयमे चर्याको निकलना चाहिए। अब ऐसे समयमे कुत्ते लोग भी देखकर भौंकने लगते तो उनको भगानेके लिए एक डडा भी चाहिए, सो एक डडा भी उन्हे रखना पड़ा। ऐसी हालत बन गई उस १२ वर्षके अकालके अन्दर। धीरे धीरे अकाल समाप्त हुआ तो फिर साधुजनोमे यह सलाह हुई कि अब तो फिर सभी साधुजनोको पूर्वकी भाँति अपना आचरण बना लेना चाहिए और उससे जो कुछ दोप लगे हो उनकी प्रायश्चित लेकर शुद्धि हो जायगी उस समय कुछ साधु तो अपनी पूर्वकी चर्यामे आ गए और कुछ ज्योंके त्यो बने रहे। अपने

आचार विचारमे कोई परिवर्तन न किया ।

(१२) पांच श्रुतकेवली हो चुकनेके बाद ११ दशपूर्वविद् आचार्योंका निर्देश—अब अकाल निवृत्त हो जानेपर व सघभेद हो जानेपर याने इसके दो भेद हो गए, यह अमुक सघ के, यह अमुक संघके, फिर जिसको जितना ज्ञान चला आया था उस समय मौखिक ज्ञान था सो उन्होने अपने ज्ञानसे ग्रन्थ बनाया । दिगम्बर आचार्योंने तो उनका नाम अलग रख करके ग्रन्थ बनाया ताकि किसीको यह भ्रम न हो कि यह गणधर देवका गूथा गया अग है । क्योकि यह तो परम्परा चल रही, दूसरे, आचार्योंने अगोका नाम रखकर ग्रन्थ बनाया । तो यह फर्क आया है कि अंगके नामपर ग्रन्थ बनाने पर भी वह साहित्य बिल्कुल थोडा है और जुदे-जुदे नाम धर कर बनाने पर भी जैसे षटपडागम, कषाय पाहुड, समय पाहुड आदिक यह साहित्य कई गुना है । तो अग तो बडा विशाल होता है । वह अग शास्त्रोमे नही आ सकता, पर उन अगोमे जो विषय समझा गया है उसका विषय ही लिखा जा सकता है । तो ऐसे ये ५ श्रुतकेवली हुए । यह सब आचार्योंकी परम्परा बतायी जा रही है कि अरहत भगवानकी दिव्यध्वनिमे बताया गया जो आगम है, वह परम्परासे आज तक चला आ रहा है । श्रुतकेवली केवल ५ ही हुए श्रुतकेवलीके बाद बाद द्वादशाङ्गके ज्ञाता तो रहे नही, किन्तु, १० पूर्वके पाठी कुछ हुए । १२ वें अगमे पूर्व होता है । १२ वां अग इतना बडा है कि ११ अगका मिलकर भी परिमाण उसके आगे कुछ नही है, इतना विशाल है १२ वां अग । तो पूर्वका बहुत बडा परिमाण हैं । ऐसे १० पूर्वके पाठी ११ मुनि हुए क्रमश. जिनके नाम (१) बिशाख (२) प्रौष्ठिल (३) क्षत्रिय (४) जयसेन (५) नागसेन (६) सिद्धार्थ (७) धृतिषेण (८) विजय (९) बुद्धिल (१०) गगदेव (११) धर्मसेन । पूर्वोंका बहुत बडा भारी परिमाण है, या यो कहो कि ११ अगके वे ज्ञाता तो थे ही, १० पूर्व और जानते थे ।

(१३) दशपूर्वविद् हो चुकनेके बाद एकादशाङ्गके पण्डित आचार्योंका निर्देश—११ दशपूर्वविद्के बाद पूर्वके ज्ञाता नही रहे । ११ अगके ज्ञाता रहे । सो ऐसे ११ अगके जाननहार आचार्य ५ हुए—जिनके नाम हैं—नक्षत्र, जयपाल, पाडु, ध्रुवसेन और कस । जैसे-जैसे समय गुजरता गया वैसे ही वैसे ज्ञानमें कमी आती रही । ११ अगके ज्ञाता ५ आचार्य हुए । उनके बाद फिर सिर्फ एक अगके ज्ञाता रह गए । एक अगके धारी चार आचार्य हुए, जिनके नाम हैं—सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु और लोहाचाय । इन चार तक बराबर द्वादशाङ्गमे जैसी शिक्षा रचना थी उसमे से एक अगकी रचनाके जाननहार थे । इसके बाद एक एक अङ्गके भी ज्ञाता न रहे, किन्तु उस एकके किसी एक देश अर्थके जाननहार रहे । अब देखिये—द्वादशाङ्गके विषयमे अत्यत अल्प ज्ञाता थे वे आचार्य जो अन्तमे रहे और आज जितना साहित्य है

यह आगम भी बहुत विशाल मालूम होता है, अब समझिये उस एकदेशका क्या परिमाण रहा ?

(१४) **पञ्चमकालमें लिपिबद्ध ग्रन्थ रचनाका प्रारम्भ**—जिस समय एक देश अगके ज्ञाता धरसेनाचार्य कुछ चिन्ता कर रहे थे मनमे कि इस पंचम कालमे आगे तो इतना भी ज्ञान नही रहनेका, तो फिर यह परम्परा कैसे रहेगी। उनकी समझमे आया कि मैं जितना जानता हूं उतना ही किसीको सिखाऊँ तो यह परम्परा चलती रहेगी। तब उन्होने दक्षिण भारतके एक सघमे जहाँ कि दो मुनि उनको विद्वान जचे, खबर भेजी कि हम आपके दो शिष्यों को अपना ज्ञान पढा सकते है। यह खबर पाकर मुनिराजने अपने दो शिष्योको धरसेनाचार्य के पास भेजा। धरसेनाचार्यने सर्वप्रथम उन दोनो शिष्योंकी बुद्धिमानीकी परीक्षा करना चाहा, सो क्या किया कि दोनो ही शिष्योको एक ही मंत्र आराधना करनेके लिए दिया, परंतु एकको उस मत्रमे एक अक्षर कम करके दिया और एकको एक अक्षर बढाकर वह मत्र दिया, और कहा कि तुम दोनो इस मत्रकी सिद्धि करो। सो दोनो शिष्योने अलग अलग रहकर उस मत्रकी आराधना किया। थोड़े ही दिनोमे उनके समक्ष देवी प्रकट हुई, एकके सामने तो बडे-बडे दाँत वाली देवी आयी और एकके समक्ष कानी देवी आयी। तो उन दोनो शिष्योने सोचा कि देवीका रूप ऐसा तो होता नही, इस मत्रमे क्या कुछ कमी है ? तो अपनी ही बुद्धिसे उन दोनोने अपना-अपना मत्र सही कर लिया। कुछ दिन फिर साधना किया तो सही रूपमे देवियाँ प्रकट हुईं। बस यह ही जानना था धरसेनाचार्यको कि इस मत्रको सुधार सकने लायक इनमें बुद्धि है या नही, उसके बाद उन्होने पढाया। उन दोनो शिष्योका नाम था पुष्पदत और भूतबलि। जिस समय धरसेनाचार्यका अतिम समय आया तो उन्होने इन दोनो शिष्योसे कह दिया कि अब तुम लोग जाइये, ताकि मुझे समाधि मरण करते हुएमे तुम्हारे प्रति राग मेरे चित्तमे न आये। वे जानते थे कि जिन शिष्योको मैंने पढाया उनके प्रति राग होनेकी सम्भावना है। तो धरसेनाचार्यका तो स्वर्गवास हुआ। पुष्पदंत, भूतबलिने षट्खंडागमकी रचना की। यह बहुत बडा विशाल करणानुयोगका ग्रन्थ है, जिसका ही कुछ थोडा सा विषय यहाँ जीवस्थानचर्चामे चल रहा है। तो जब वह ग्रन्थ पूरा बन चुका तो वह था कोई जेठ सुदी पचमीके करीबका दिन, या संभव है कि इसी दिन पूर्ण हुआ हो, तो उस समय बड़े समारोह के साथ उस लिखित ग्रथकी लोगोंने पूजा की और तबसे यह श्रुतपचमीका पर्व प्रारंभ हुआ।

(१५) **अनेक आचार्योकी परम्परासे आगमका अब तक चला आ रहा प्रवाहका परिचय**—फिर उसी समय कषाय पाहुड ग्रन्थकी रचना हुई फिर उस परम्परासे अनेक ग्रन्थ दार्शनिक शास्त्र, करणानुयोग ये सब रचनेमे आने लगे। और इतना विशाल आगम आज जैनागम पाया जा रहा है तो इस आगमकी यह परम्परा है, परम्परासे चला आया है आगम

इसलिए इसमे प्रामाणिकता है । दूसरे—वस्तुके स्वरूपके अनुसार वर्णन है, जहाँ कोई विरोध नही आता । जो परोक्षभूत पदार्थोंका वर्णन है वह इसके लिए एक श्रद्धासे प्रमाणीक है, क्यो कि जिस आगममे अनुभवमे उतरने वाले तत्त्वोका स्वरूप सही-सही दिखाया है वहाँ परोक्षभूत पदार्थोंका स्वरूप मिथ्या क्यो माना जायगा ? आज भी ग्रन्थके लिखने वालेपर पढने वालेको अगर श्रद्धा है तो वह उस ग्रन्थसे लाभ उठा लेता है और यदि कोई उस ग्रन्थको कुछ सदेहके साथ पढ रहा है, ग्रन्थकर्तापर विश्वास नही है तो उससे वह आत्महितके लिए फोर्स (बल) न पा सकेगा । तो जो आगम आज है उसके लेखक आचार्य वीतरागी थे, आत्मकल्याणके अभिलाषी थे, अत जो भी आगममे उन्होंने लिखा है वह सब सही है, ऐसी श्रद्धा ज्ञानीको रहती है ।

(१६) **आगममे अपुनरुक्त अक्षरोकी गणना**—इस दूसरी गाथामे अभी यह बताया गया था कि भगवानकी दिव्यध्वनिकी परम्परासे, आचार्योंकी परम्परासे जो आगम अब तक चला आया है, उसका पूर्णरूप द्वादशांग था । आज तो द्वादशाग है नही, पर समस्त आगम द्वादशांग और अगबाह्यमे है । उसी सम्बधमे बतलाते हैं कि वे १२ अग कौनसे है, और उन अगोमे कितने पद है, कितने अक्षर हैं । पहले तो यह जानना कि अपुनरुक्ताक्षर याने जो अक्षर एक बार कह दिया जाय उसे फिर दुबारा न कहा जाय, ऐसे अपुनरुक्ताक्षर कितने होते है ? तो अब अदाज कीजिए कि जैसे इकहरे-इकहरे तो ६४ अक्षर हैं, अब उनको एकमें दूसरा मिलाया, फिर उसे हटाकर और दूसरा मिलाया तो ऐसे द्विसयोगी अक्षर कितने हो सकते हैं बहुत अधिक सख्या होगी । केवल दो ही अक्षर मिलें तो ६४ मे ६४ का गुणा करें तो जितना गुणनफल आया उससे एक अक्षर माना जाय और वह भी बदल-बदलकर उनका प्रमाण, ऐसे ही ४-५ आदि जोड-जोडकर ६४ अक्षर तक मिलावें और फिर उनको बदल-बदलकर मिलावें तो वे सारे अक्षर कितने होंगे कि जो दुबारा न कहे जायें । तो आज जितनी सख्या अधिकसे अधिक मानी जाती उससे कितनी ही अधिक हो जाती, जिसको बताया है कि २० अक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर है । जैसे ईकाईमे एक अंक, दहाईमे दो अक, सैकडामे तीन अक, इस तरह क्रमसे लगाते जाइये, हजारमे ४ अक, दस हजारमे ५ अक, लाखमे ६ अक, १० लाखमे ७ अक, करोडमे ८ अंक, १० करोडमे ९ अक, अरबमे १० अक, १० अरबमे ११ अक आदि बस इतनी ही आजकल सख्या चल रही है, आजकल खरब, नील, पदम आदि संख्यावोका रिवाज नहीं है । इसी क्रमसे चलते जाइये तो १० शखमे १९ अक हुए, और अक्षर हैं २० अक प्रमाण, इसके मायने हैं कि हजारो शख हो गए, इतने अक्षर अपुनरुक्त हैं ।

(१७) **आगममे पदोकी गणना**—आगमके अपुनरुक्त उन अक्षरोका पद बनाया जाय तो पद कम होते हैं । यहाँ विभक्ति वाले पदसे मतलब नही । पदको एक सीमा है । एक

मध्यम पद १६ अरब, ३४ करोड, ८३ लाख, ०७ हजार, ८८८ अक्षरोमे माना गया है। इतनेका गुणा उन २० अंकोमे दिया जाय तो सर्व पदोकी संख्या कितनी हुई याने अपुनरुक्त अक्षर वाले द्वादशाङ्ग समस्त आगममे कितने पद हुए, जिनका प्रमाण है—१ अरब, १२ करोड, ८३ लाख, ५८ हजार, ००५, इतने सारे आगमके पद है और एक पद इतना बडा होता कि बडासे बड़ा एक ग्रन्थ एक पदमे न कहलायगा। अब यहाँ यह जानना कि यह पद जो बतलाया है अभी इससे भी कुछ बच गया है आगम, जो एक पदमे नही आता, किन्तु अक्षर ही रह गए उनको बोलते हैं अगबाह्य। इस प्रकार अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य ये समस्त आगम कहलाते हैं। जो अक्षर बच गए थे, जो एक पद नही कहलाये, वे अक्षर हैं ८ करोड, ०१ लाख, ०८ हजार, १७५। इतना बडा आगम है जिस आगमको कोई पुस्तकमे नही बाँध सकता, मगर अकालके समय जो जैनशासनमें सघभेद बन गया था तो दिगम्बर जैनसंघ मे तो सही बात रखी याने जो शास्त्र बने, चाहे उनमे उस द्वादशांगका भी कोई शब्द हो तिसपर भी ग्रन्थोके नाम दिए गए हैं, अगके नाम नही दिये, किन्तु दूसरे सघने अङ्गोके नाम दिये हैं अपनी छोटी-छोटी पुस्तकोके ?

(१८) आचाराङ्ग सूत्रकृताङ्ग व स्थानाङ्गके विषय व पदगणनाका निर्देश—अब उस द्वादशाङ्गके नाम और प्रत्येक अङ्गमे कितने पद हैं उसका वर्णन किया जा रहा है। १२ अङ्गके नाम है—(१) आचारांग, (२) सूत्रकृत अङ्ग, (३) स्थान अंग, (४) समवाय अग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति अग, (६) ज्ञातृधर्मकथा अंग, (७) उपासकाध्ययन अंग, (८) अतकृत दशाग अग, (९) अनुत्तरोपादक दश अग, (१०) प्रश्न व्याकरण अग, (११) विपाकसूत्र अग, (१२) दृष्टिवाद अग। इन १२ अगोमे जो दृष्टिवाद अंग है अन्तिम, उसका बहुत बडा रूप है, जिसके आगे ये ११ अङ्ग मिलकर भी बहुत छोटा रूप रहता है। इसका वर्णन करेंगे, पर पहलेसे सुनो—आचाराग मायने क्या ? जिस अङ्गमे मुनियोके आचरणका वर्णन हुआ, कैसे ठहरना, बैठना, चर्या करना, कैसा यत्न रखना, किस तरह ध्यानमे आना, उनका क्या तप हैं, यह सब वर्णन आचारागमे आता है। इसके १८ हजार पद है। एक पदके तो करोडो अक्षर होते हैं, ऐसे १८ हजार पद हैं। दूसरा अङ्ग है सूत्रकृत अग। इस सूत्रकृत अङ्गमें क्रियावोका विशेष वर्णन है। कैसे ज्ञानी जनोका विनय करना, कैसे धर्मात्मा जनोका आदर करना, कैसी स्वमतकी धर्मक्रिया है कैसी परमतकी धर्मक्रिया है ऐसी धार्मिक क्रियाका विशेष वर्णन है। इस अगके ३६ हजार पद हैं। तीसरा अग है स्थान अग। इस स्थान अंगमे पदार्थों का स्थानके अनुसार वर्णन है। जैसे २-२ क्या चीजें होती है उनका संग्रह। समस्थानका वर्णन है। कुछ वर्णन ग्रन्थोके अनुसार समस्थान सूत्रमे किया है। एक क्या है ? केवल एक

सत्त्व । २ क्या है ? ऐसे सैंकडो पदार्थ । ३ + ३ क्या ? जिसके भेद ३-३ हैं, ४-४ हैं ऐसे १००-१०० तकके भेदके अलग अध्याय हैं । और हजार लाख करोड, सख्यात, असख्यात, अनन्त कितने क्या-क्या होते है, यह सब वर्णन है । पर स्थान अ गमे तो इसका बहुत ही अधिक वर्णन है । एक स्थानके आश्रयसे भी भेदोका वर्णन इस अ'गमे है । जैसे—जीव सामान्यतः एक है, विशेषत दो है, ३ प्रकार हैं, इस तरह एक-एक पदार्थके भी अनेक स्थान बताये गए हैं । इस तरह भी स्थानका वर्णन है । इस अ गमे ४२ हजार पद है ।

(१९) समवायाङ्ग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा व उपासकाध्ययन अङ्गके विषय व पदगणनाका सकेत—चौथा अ ग है—समवाय । इसमे समानताका वर्णन है । जीवादिक ६ द्रव्योका द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिक रूपसे वर्णन है और इसमे जब सबका वर्णन चल रहा तो किसका किसके समान है, यह भी बात आती है । जैसे कहते हैं ना—जम्बूद्वीप, सौधर्मस्वर्ग का पहला ऋतु विमान, सर्वार्थसिद्धि ये सब एक बराबर क्षेत्रके हैं । इसी तरहसे अनेक बातो का वर्णन है, इसके पद हैं १ लाख ६४ हजार । ५वाँ अ ग है—व्याख्याप्रज्ञप्ति । इस व्याख्याप्रज्ञप्तिमे ६० हजार प्रश्नोका और उत्तरोका वर्णन है । जैसे कि तीर्थंकरोके समयमे गणधरदेव प्रश्न करें और उत्तर करें, ऐसा इस उत्तरका वर्णन इस अ गमे है । इसके पद हैं २ लाख २८ हजार, किन्तु उन प्रश्नोत्तरोका बहुत अधिक विशाल रूप हो जाना है । छठे अ गका नाम है—ज्ञातृधर्मकथा । इसमे तीर्थकी धर्मकथायें हैं । जीवादिक पदार्थोंके स्वभावका वर्णन गणधरके प्रश्नोका उत्तर, इसके पद हैं ५ लाख ५६ हजार । व्याख्याप्रज्ञप्तिके प्रश्नोका इसके उत्तरसे भी सम्बध है । ७वाँ अ ग है—उपासकाध्ययन । उपासक कहते हैं श्रावकको । श्रावकके धर्मका जिसमे वर्णन है उसे उपासकाध्ययन कहते हैं । इसमे ११ प्रतिमा और श्रावकोके आचरणका वर्णन है । किस प्रतिमामे कैसी प्रवृत्ति है, किस रूप कषाय है, कैसा श्रावकको आचरण करना चाहिए । श्रावकोके धर्मकी सब बातें इस अ गमे है । इसके पद हैं ११ लाख ७० हजार ।

(२०) अन्तःकृद्दशाङ्ग व अनुत्तरोपपादक दशाङ्गके विषय व पदगणनाका संकेत—८वें अ गका नाम है—अ त कृत दशाग । एक एक तीर्थंकरके समयमे १०-१० ऐसे केवली हुए हैं जो अन्त कृत कहलाते है । जिनपर घोर उपसर्ग हुआ और उपसर्गोंके प्रसंगमे जिनको ज्ञान हो गया, केवलज्ञान हो गया, ऐसे १०-१० अन्त कृत केवलियोका इस अ गमें वर्णन है । इस अ गके पद हैं २३ लाख २८ हजार । ९वें अ'गका नाम है अनुत्तरोपपादक दशाग । १६ स्वर्गोंसे ऊपर नवग्रैवेयक हैं, ९ ग्रैवेयकसे ऊपर ९ अनुदिश हैं, उसके ऊपर ५ अनुत्तर विमान है । इन अनुत्तर विमानोमें उत्पन्न होने वालोको अनुत्तरोपपादक कहते हैं । यह नियम है कि

अनुत्तर विमानोमे जो देव उत्पन्न हुए उनमे सर्वार्थसिद्धिके देव तो एक भवावतारी है। वहाँ से चय कर मनुष्य होकर उसी भवसे मोक्ष जायेंगे। शेष चार अनुत्तर विमानोके अधिकसे अधिक दो भवावतारी हैं। दो भव मनुष्यके पाकर वे मोक्ष जायेंगे। उन १०-१० मुनियोका वर्णन है जो तीर्थंकरके समयमे ऐसे १०-१० महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होते है। पहले जो अन्तःकृत दश नामा अंग था उसमे तो उपसर्ग सहकर केवलज्ञानी हुए और इस अंगमे उपसर्ग सहकर अनुत्तर विमानोमे हुए उनका वर्णन है। इसमे पद ९२ लाख चवालीस हजार है।

(२१) **प्रश्नव्याकरणाङ्गके विषय व पदगणनाका निर्देश**—१०वें अंगका नाम है प्रश्नव्याकरणनाम अंग। इसमे शुभ अशुभ स्वप्नादिकका या किसी घटनाका कोई प्रश्न है और उत्तर है। भूतकालमे जो शुभ अशुभ घटना हुई उसका भी प्रश्नोत्तर है। अनागत कालमे, भविष्यमे कोई शुभ अशुभ बातें हुईं, उनका प्रश्नोत्तर है तथा वह कैसे दिया जाय उत्तर उन उपायोका वर्णन है। यो तो प्रश्न बहुत हो सकते। भिन्न-भिन्न घटना है, अगर ऐसा प्रश्न हो तो उसका क्या फल है, किस तरह उत्तर हो, उन उपायोका सकेतोका वर्णन है। इसके अतिरिक्त चार प्रकारकी कथाओका भी वर्णन है। कथायें चार तरहकी होती है—आक्षेपणी—जो खण्डन मडनरूप है, दूसरेपर आक्षेप करने वाली है वे आक्षेपणी कथायें हैं। विक्षेपणी—जो कुछ विक्षेप उत्पन्न करें। उपयोग जिससे घूमे अथवा जिसमे कोई क्षोभ वाली कथायें है। सवेदनी और निर्वेदनी ये धर्मवर्द्धक और निर्वेदनी कथामे वैराग्य भावना बनती है। तो इन चार तरहकी कथाओका वर्णन है। कथाओके मायने कहानी ही नही, किन्तु ऐसा वाक्य प्रबन्ध, जिसमे ये चार प्रकारकी बातें आयें। समाधिमरण कोई मुनि कर रहा हो उस समय उसे आक्षेपणी और विक्षेपणी कथा न सुनायी जायगी, उसे आवश्यक है धर्ममे रुचि बढे और संसार शरीर भोगोसे वैराग्य बढे, तो उसे सवेदनी और निर्वेदनी ये दो कथायें ही सुनाई जाती हैं। इस अंगमे ९३ लाख १६ हजार पद है।

(२२) **विपाकसूत्राङ्गके विषय व पदगणनाका विवरण**—११ वें अंगका नाम है विपाकसूत्रनामा अंग। इसमे कर्मोंके उदयका वर्णन है। कर्मोंमे तीव्र मंद अनुभाग फल देने की शक्ति कैसी है और किस द्रव्य क्षेत्र काल भावसे लेकर कैसा फल मिलता है इन सबका वर्णन है। कर्म उदयमे आते हैं, पर उदय होनेपर भी जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका योग होता है उसके अनुसार उसकी तीव्रता मदता बन जाती है। जैसे किसी समय तीव्र क्रोध आ रहा हो और वह हो मदिरमे तो बताओ उसके क्रोधमे कुछ थोडा फर्क पडेगा कि नही? अवश्य पडेगा। इसीलिए तो बताया है कि अपना अधिक समय धर्मसाधनामे बिताना

चाहिए । इसी तरह काल भावकी भी बात है । कर्मविपाकका तो कोई नियत समय नही है । किसी कारण कुछ भी हो जाता है । सुबहके समय ब्राह्म मुहूर्तमे प्राय. लडाइयाँ कम देखी जाती हैं और क्रोध प्रकृतिका तीव्र विपाक होता भी होगा, मगर वह काल कुछ ऐसा धर्म अध्ययन स्वाध्याय आदिकका है कि जिस समयमे उसके क्रोधादिक तीव्र नही हो पाते । हो भी जायें यह नियम नही, किन्तु प्राय ऐसा देखा जाता है । तो किस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे किस प्रकारका कर्मफल देता है यह सब वर्णन इस ११वें अगमे है । इसके पद हैं १ करोड ८४ लाख । ये तो ११ अग हुए । १२वाँ अग है दृष्टिवाद नामा अग । अब यहाँ यह देखना कि इन ११ अगोके पदोकी सख्या याने सबका जोड ४ करोड, १५ लाख, २ हजार पद हैं । सामान्य रूपसे समझ लीजिए कि ४ करोड पद हैं ।

(२३) दृष्टिवाद अङ्गके विषय व पदगणनाका निर्देश—अब १२वाँ जो अग आयगा उसके पद इसमे कई गुणित हो जाते हैं । तो १२वें अगका बहुत बडा विस्तार है । इसका नाम है दृष्टिवाद अग । इसमे अनेक प्रकारके वर्णन हैं जिनमे मुख्यता ३६३ कुयोनियोकी है । खोटे मत ३६३ प्रकारके होते हैं । यद्यपि ऐसे मत आज प्रकट नही दिख रहे, मगर सिद्धान्त और विचारके हिसाबसे एकका दूसरेसे फर्क दिखता । जैसे ३६३ कुवादी हो जाते हैं । आज तो खालिस धर्म याने जिसमे कई सम्प्रदायोका जुडना किया गया हो, बहुत कम मिलते हैं, जैसे—जैन, बौद्ध, नैयायिक आदि । उनमे कौन अच्छा कौन बुरा, यह बात नही बतला रहे किन्तु जैनमे जैनदर्शनकी ही बात मिलेगी, बौद्धमे बौद्धदर्शनकी ही ही बात मिलेगी, इस तरह से अन्य दर्शन बहुत कम हैं । जैसे एक हिन्दू सम्प्रदाय ही ले लो, उसमे एक दर्शन नही है । कुछ साख्य दर्शन, कुछ नैयायिक दर्शन, कुछ मीमासक दर्शन, कुछ वंशेषिक दर्शन है, कई दर्शन मिलेंगे और कभी-कभी जैनदर्शन भी आ गया है तो यह तो खालिस कुवादकी बात कह रहे । जिसमे एककी दूसरेमे मिलावट नही, ऐसे कुवाद ३६३ हैं । इनका वर्णन इस दृष्टिवाद अगमे है । अब इस सम्बन्धको लेकर कुछ खोटा वर्णन होगा । कुछ भला भी वर्णन होगा, पर उनका सम्बन्ध ३६३ कुवादसे है । दृष्टिवाद अगका विशेष खुलासा इससे आगे किया जायगा ।

(२४) दृष्टिवाद अगके पाच विभाग—अरहंत देवके द्वारा भाषित अर्थात् दिव्यध्वनि से प्रकट हुए गणधर देवके द्वारा गूथा गया जो द्वादशाङ्ग आगम है उसमे अब तक ११ अग का वर्णन हुआ । १२ वें दृष्टिवाद अगका सामान्यतया वर्णन तो किया था कि इसमे १०८ करोड ६८ लाख ५६ हजार पद है । इतने पद ११ अगके मिलकर भी नही हैं । अब १२ वे अगका विस्तार कितना है सो सुनो १२ वें अगके पहले तो ५ विभाग बनाओ, परिकर्म, सूत्र,

प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। ११ अंग १४ पूर्व जो कहे जाते है उनमे समस्त आगम नही आता, पर १४ पूर्वका इतना बडा विस्तार है कि जितना विस्तार बाकी समस्त आगम का नही है, इस कारण १४ पूर्व कहनेसे ११ अग भी समझ लिये जाते है। अगर यह कहा जाय कि अमुक मुनि १० पूर्वके धारी है तो उसके मायने यह है कि ११ अग तो जानते ही है, १० पूर्व और जान रहे है क्योकि जो बड़े परिमाणको चीज है उसको बोल देनेसे छोटे प्रमाणकी चीज समझमे आ जाती है। तो अब दृष्टिवाद अगके ये ५ विभाग हैं,

(२५) **परिकर्मगत चंद्रप्रज्ञप्ति व सूर्यप्रज्ञप्तिके विषय और पदगणनाका निर्देश**—परिकर्ममे क्या वर्णन आता है? गणित शास्त्रका। गणितके करणसूत्र, जिसे कहते है गुर। पहले हिसाब किताब लगानेके लिए गुर हुआ करते थे, तो करण याने गणितका समस्त हिसाब बताने के लिए सूत्र है ना? उस परिकर्ममे ५ भेद है—(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (२) सूर्यप्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, (४) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति। चन्द्रप्रज्ञप्तिमे चन्द्रमाके हिसाब से गणित बताया गया है। पहले तो चन्द्रमाका परिवार बताया चद्र ज्योतिषी देवोका इन्द्र है जो दिखता है लोगोको चंदा, वह चंद्र देव नही है किन्तु चद्रदेवके रहनेका विमान है। तो उस चद्रदेवका परिवार कितना है? वह कहाँ तक आता जाता है। उसकी बढोतरी कितनी है, कभी हानि हो तो कितनी है। उसके परिवारमे तारे सूर्य यतोन्द्र हैं, उसका परिवार अलग गिनाया है, पर तारे नक्षत्र वगैरह ये चद्रके परिवार है। ग्रह वगैरह इसमे सब आ जाते हैं। तो इन ग्रहोकी चालसे, चद्रकी चालसे गणित चलता है। जैसे हिन्दुस्तानमे चंद्र, उसके हिसाबसे महीना चलता है। तभी तो पूर्णिमा वह कहलाती है जिस दिन पूरा चाँद हो और चद्रकी अपेक्षा महीना माननेसे तीन साल बाद करीब १३ महीनेका साल आता है, याने उस वर्षमे १३ चांद निकलते है। पूरे अन्य सम्वतावसरोमे पूरे चाँद १२ निकलते हैं, तो चद्रको गतिके हिसाबसे महीना, ग्रहण आदि सब बातें निकाल ली जाती हैं। और और भी गणित उसके हिसाबसे बने, यह सब चंद्रप्रज्ञप्तिमे है। इसके पद है ३६ लाख, ५ हजार। दूसरा परिकर्म है सूर्यप्रज्ञप्ति इसमे सूर्यकी ऋद्धिका, परिवारका, गमनागमनका वर्णन है। कई जगह सूर्यके हिसाबसे माह माना जाता है और अब आजकल यह प्रायः गौण हो गया है। इसे कहते हैं सौरमास। और १२ राशिके जो १२ सूर्य बताये गए वे सौरमासके हिसाबसे हैं। जैसे करीब असोजमे कन्याराशिका सूर्य होता और उसमे बहुत तेज गर्मी पडती कुछ भाद्रपदसे भी लिया जाता है तो ऐसे अलग-अलग राशिमे अलग-अलग सूर्य बताये गए है, तो सूर्यकी गतिसे भी गणित निकलता है। इसके पद है ५ लाख ३ हजार।

(२६) **परिकर्मगत जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति व द्वीपसागरप्रज्ञप्ति व व्याख्याप्रज्ञप्तिके विषय**

व पदगणनाकी संख्या—तीसरा परिकर्म है जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति। इसमे जम्बूद्वीपसे सबधित सब रचनाओका वर्णन है। जम्बूद्वीपमे एक मेरू है, ६ कुलाचल पर्वत हैं, जम्बूद्वीप गोल है। उस गोलके बीचमे ६ कुलाचल आनेसे ७ क्षेत्र बन जाते है। उनका विस्तार, उनकी रचना कौन कहाँ जीव रहते है आदिक वर्णन इस जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिमे है। इसके पद हैं ३ लाख २५ हजार। चौथा परिकर्म है द्वीपसागर प्रज्ञप्ति। इसमे द्वीप और सागरोका वर्णन है। यद्यपि जम्बूद्वीप भी इसमे आ गया, पर जम्बूद्वीपका विशेष वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिमे है। तो यहाँ थोडा वर्णन लेकर बाकी द्वीप समुद्रोका विस्तारपूर्वक वर्णन है। जैसे जम्बूद्वीपको भेडे हुए लवण समुद्र है। जम्बूद्वीप तो एक लाख योजनका है पर लवण समुद्र एक और दो लाख योजनका है। पर इस दृष्टिसे देखा जाय तो कहा तो यो जाता है कि उस जम्बूद्वीपसे दूना क्षेत्र है लवण समुद्रका पर दूना नही, कई गुणा क्षेत्र बन जाता है। जम्बूद्वीपको घेर कर लवण समुद्र है मगर वह दूना एक तरफ है। दूसरी तरफका उतना दूना है, चारो तरफ दूना-दूना है। उसको घेरे हुए दूसरा द्वीप है। वह लवण समुद्रसे भी दूना है और वह दूना एक-एक तरफ है ऐसे दुगने दुगने द्वीप और समुद्र है। और उनकी गणना असख्यात है। तो द्वीप और सागरोका वर्णन इस चौथे परिकर्ममे है। इसके अलावा यह भी बताया गया कि वहाँ कितने ज्योतिषी देव हैं, व्यन्तर देव है, भवनवासी देव कहाँ कहाँ रहते हैं, व्यतर आदि कहाँ-कहाँ रहते हैं और उनके भवनोमे जिन मदिर हैं तथा अलग भी जिन मदिर हैं। तो समस्त द्वीप सागरोमे किन-किन द्वीपोमे मदिर हैं। यह भी उसमे वर्णन आया है। अजीव पदार्थके प्रमाणका वर्णन किया गया इसमे पद है ५२ लाख ३६ हजार। ५वां परिकर्म है व्याख्याप्रज्ञप्ति। इस परिकर्ममे जीव है। जीव कितने हैं, अजीव कितने है, उनका कैसा स्वरूप है, इन सबकी व्याख्या की गई है इसमे पद है ८४ लाख ३६ हजार। इस प्रकार इन पांचो ही परिकर्मोसे समस्त पद जुड जायें तो एक करोड ८१ लाख, ५ हजार पद होते हैं। यह दृष्टिवाद अङ्गके पहले विभागका वर्णन है।

(२७) दृष्टिवाद अगके द्वितीय विभागसूत्रके व तृतीय विभाग प्रथमानुयोगके विषय एवं पदगणनाका निर्देश—अब दृष्टिवादका दूसरा विभाग है सूत्र। सूत्र नामक अधिकारमे ६३ कुवादियोका वर्णन है जिसके मिथ्यात्वका उदय है, मिथ्यात्वमिश्रित जिसका प्रलाप है ऐसा ६३ कुवादीका पूर्व पक्ष लेकर उनको जीवादिक पदार्थोपर लगाना, उनका निराकरण करना यह सब इस सूत्र नामक परिकर्ममे है। यो समझिये कि बडे बडे दर्शनशास्त्र, न्याय-शास्त्र ये सब इस सूत्रसे निकले हुए हैं। इसके पद ८८ लाख है। अब १२ वें अगका तीजा विभाग प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोगमे ६३ सलाका पुरुषोका चरित्र है। महापुरुषोकी उसमे

कथायें बतायी गई है, उनसे जीवको उपदेश मिलता है। कैसे कैसे महापुरुष हुए है, उनकी पहले क्या प्रवृत्ति रही थी। कैसे वैराग्य हुआ, कैसे धर्मध्यानमे लगे, कैसे उनपर उपसर्ग आया, निर्वाण हुआ या स्वर्ग आदिकमे गए, या जिस गतिमे गए, यह सब वर्णन प्रथमानुयोगमे मिलता है। प्रथमानुयोग तो बडा प्रसिद्ध शब्द है। जितने आजके पुराण है वे सब प्रथमानुयोगमे कहलाते हैं। इनके पद हैं ५ हजार। ५ हजारकी भी बहुत अधिक सख्या है। इसमे कितने ही ग्रन्थ आ जायेंगे। उसमे भी ५ हजार पद पूरे न होगे।

(२८) **दृष्टिवादके चौथे विभाग पूर्व नामक आगमका संक्षिप्त विवरण**—अब १२ वें अगका चौथा अधिकार है पूर्वगत। इस पूर्वगतका बहुत बडा प्रमाण है। ये पूर्व होते है १४। उन १४ पूर्वोंके नाम हैं— (१) उत्पाद नामपूर्व (२) अग्रायणी नामपूर्व (३) वीर्यानुवादनामपूर्व (४) अस्तिनास्ति प्रवाद नामापूर्व (५) ज्ञानप्रवाद नामापूर्व (६) सत्यप्रवाद नामा पूर्व, (७) आत्मप्रवाद नामापूर्व (८) कर्मप्रवाद नामापूर्व (९) प्रत्याख्यान नामापूर्व (१०) विद्यानुवाद नामापूर्व (११) कल्याणवाद नामापूर्व (१२) प्राणवाद नामापूर्व, (१३) क्रियाविशाल नामापूर्व, (१४) त्रिलोक बिन्दुसार नामापूर्व। इनमे जो १० वें पूर्व तकका ज्ञाता हो गया वह ऋद्धि वाला माना जाता है, और १० वां पूर्व सम्यग्दृष्टिके ही सिद्ध होना है। ९ पूर्व तक मिथ्यादृष्टि मुनिके भी ज्ञान हो जाता है। ११ अग और कुछ ये परिकर्म और ९ पूर्व, यहां तकका ज्ञान अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मुनिराजके हो जाता है। अब वे भी मुनिराज बहुत ऊँचे बढे चढे ज्ञानी विद्वान तपश्चरणमे सावधान, किसीपर रागद्वेष न करने वाले ऊँचे ही पुरुष होते हैं, लेकिन मिथ्यात्वका ऐसा उदय है कि कोई सूक्ष्म अंश मिथ्यात्वका रह गया। १० वां पूर्व उनको ही सिद्ध होता है जो सम्यग्दृष्टि हैं। इसीलिए १० वां पूर्व बहुत प्रसिद्ध है।

(२९) **उत्पादपूर्व व अग्रायणी पूर्वके विषय व पदगणनाका निर्देश**—इन १४ पूर्वों मे प्रथम पूर्व है उत्पाद पूर्व। इस पूर्वमे वस्तुके उत्पाद व्यय ध्रौव्यादिक अनेक भेदोकी अपेक्षा भेदका वर्णन है। उत्पाद नवीन अवस्थाका आविर्भाव, व्यय याने पुराने याने चल रही अवस्थाका विलीन हो जाना, ध्रौव्य मायने वस्तुका सत्त्व सदा बना रहना ये तीनो वस्तु मे अविना भावी है। यदि उत्पाद नही है तो व्यय और ध्रौव्य भी नही हो सकते, यदि व्यय नही है तो उत्पाद और ध्रौव्य भी नही हो सकते, यदि ध्रौव्य नही है तो उत्पाद और व्यय भी नही हो सकते, यदि इस उत्पाद व्यय और ध्रौव्यसे संबंधित सभी प्रकारका वर्णन है और वस्तुमें रहने वाले अनेक धर्मोकी अपेक्षा उन सबका वर्णन है। इसमे पद है एक करोड। ११ अंगोका जितना भी पद समूह है उसका जोड़ होता है ४ करोड और कुछ

लाख। अब यहाँ देखें कि इस उत्पाद पूर्व अगमे ही एक करोड पद है। दूसरा पूर्व है अग्रायणी नामपूर्व। इस पूर्वमे ७०० सुनय और दुर्नयका और ६ द्रव्य, ७ तत्व, ९ पदार्थोंका वर्णन है। नयकी सख्या मूलमे दो है—(१) द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। इसका विस्तार किया जाय तो बढते चले जाइये। द्रव्यार्थिकनयके ३ भेद हैं—नैगम सग्रह व्यवहार। पर्यायार्थिकनयके चार भेद है—(१) ऋजुसूत्रनय, (२) शब्दनय, (३) समभिरूढनय और (४) एवभूत नय। अब उनका और भी वर्णन बढाते जाइये तो व्यवहारमे अब जितनेमे काम पडता है वे करीब १५० नय हैं, मगर उनके और भी भेद किए जायें तो ७०० नय तकका वर्णन आगममे है। पर इसके अलावा और भी जितनी विवक्षायें हैं वे सब इन ७०० में ही गर्भित हैं, पर उनके और भी भेद बना लिए जायें तो अनगिनते नय हो सकते हैं। जितने विचार हैं, जितनी विवक्षायें है, अपेक्षायें हैं उतने नय हो सकते हैं। तो इस अग्रायणी नाम पूर्वमें नयोका वर्णन है। द्रव्य तत्व और पदार्थोंका वर्णन है। इसमें ९६ लाख पद हैं।

(३०) वीर्यानुवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व व ज्ञानप्रवादपूर्वके विषय व पदगणनाका निर्देश—तीसरा पूर्व है वीर्यानुवादनाम पूर्व। इसमे ६ द्रव्योकी शक्ति वीर्यका वर्णन है। द्रव्यमे क्या शक्तियाँ हैं उन शक्तियोका स्वयमे क्या प्रभाव है यह सब वर्णन इस वीर्यानुवाद नाम पूर्वमे है। जीवकी शक्ति, पुद्गलकी शक्ति ये सब इस पूर्वमे बताये गए है। पुद्गलकी शक्तिका आजकल वैज्ञानिक लोग कितना प्रसार बना रहे हैं, यह जो अब तक बम बना पाये इससे असख्यातगुणा प्रभाव है परमाणुमे। जीवकी शक्ति, जीव यदि व्यवहारके सारे ख्याल और विकल्पोको तजकर एक शुद्ध अविकार अपने चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि रखे तो उसके बलकी बात बतानेको शब्द ही नही हैं, पर यह जीव कर्मविपाकवश इतना कमजोर और कायर स्वच्छद हुआ है कि वह बाह्य पदार्थविषयक मोह रागद्वेष छोडनेको तैयार नही होता। और, हैं ये सब व्यर्थकी बातें। कितने दिनोका जीवन है ? इतने दिनोंके लिए उन बाह्य पदार्थोंमे कुछ राग कर लिया तो उससे आत्माका क्या उठता है ? जो विवेकी ज्ञानी पुरुष हैं, सम्हले है, आत्मस्वरूपको सम्हाला है उनको ही तो बातें बतायी गई हैं कि ६४ ऋद्धियां प्रकट होती हैं और फिर केवलज्ञान प्रथम ऋद्धि जिसमे लोकालोक तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ एक साथ स्पष्ट ज्ञात हो गई। तो इस पूर्वमे द्रव्योकी शक्तियोका वर्णन है। इसमे ७० लाख पद हैं। चौथा पूर्व है अस्तिनास्तिप्रवादनामापूर्व, इसमे अस्तिनास्तिका हर प्रकारसे वर्णन है, जैसे जीवका स्वरूप स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे तो अस्तिरूप है और परद्रव्य क्षेत्र काल भावसे नास्तिरूप है, ऐसे ही अन्य अन्य जो धर्म पाये जाते हैं उन धर्मोंमे भी विवक्षावश अस्ति

नास्तिकी बात बतायी गई है। और इस तरह अनेक धर्मोंमे विधि निषेध द्वारा सप्तभंग बताकर विरोध मिटाया गया है क्योंकि जहां मुख्य और गौणकी उपेक्षा कर दी जाय वहाँ विरोध नही होता। इस पूर्व मे ६० लाख पद है ५वाँ पूर्व है ज्ञानप्रवाद नामा पूर्व, इसमे ज्ञानके भेदोका स्वरूप बताया है। जैसे ज्ञानके ५ भेद है— (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन.पर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान, इनका विस्तारसे स्वरूप और इसमे भी जो अनेक भेद पड़े हैं उनकी अपेक्षा सख्या वहा बतायी गई है और उन ज्ञानोका फल क्या है ? यदि मिथ्यात्व साथ हो तो उनमे से किन ज्ञानोपर असर पडता है ? वे खोटे बन जाते है, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि। तो ज्ञानविषयक समस्त तथ्योका इसमे वर्णन है, इसमे पद है ९९ लाख अर्थात् एक लाख कम एक करोड़।

(३१) सत्यप्रवादपूर्वके विषय व पदगणनाका निर्देश—छठवें पूर्वका नाम है सत्यप्रवादपूर्व। इसमे वचनविषयक अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियोका वर्णन किया गया है। सत्य वचन कितनी तरहके होते है ? कोई नाम सत्य है, कोई रूप सत्य है, कोई प्रमाण सत्य है। तो यह १० प्रकारके सत्योका वर्णन है। असत्यका वर्णन जो जैसा पदार्थ है उससे उल्टा जानना, असत्यको सत्य जानना आदिक नाना प्रकारके असत्य वचनोका वर्णन है। तो वचनविषयक सब प्रवृत्तियोका वर्णन इस प्रवादमे किया गया है, तो वचनविषयक जो वर्णन है वह इतना विशाल क्यो किया कि इस मनुष्यका धन वचन ही है। सारा व्यवहार वचनोसे चलता है। अच्छा बुरा होना वचनपर निर्भर है, और वचनोपर इस मनुष्यको बहुत ध्यान रखना चाहिए, इतना विवेक रखना चाहिए कि किसी समय कषाय विशेष भी उमड आये तो भी वचन बुरे न निकलें, क्योकि जो मनमे बात उमडी है वह जब तक भीतर ही है, बाहर नही प्रकट की है तब तक अपने अधिकारमे सब बात है। थोडे समय बाद मनको समझा कर उस गडबडीको निकाला जा सकता है, पर वचनसे गडबडी जाहिर कर दी। और उसे कष्ट हुआ तो उस दूसरे की ओरसे भी कुछ प्रतिक्रिया होगी, फिर इसकी कषाय बढती जायगी। यद्यपि कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जो भीतर है सो हम भीतर नही रखते, बाहर प्रकट कर देते है और इसमे वे अपनी शान समझते हैं, मगर उनकी यह कमजोरी है कि भीतरकी बातको भीतर ही रखकर दूसरे समयमे उस बातको नष्ट कर देना, यह बल उनके अदर नही है और वह उस भीतरकी कषायके वेगमे बाहरी वचनों द्वारा उगल ही बैठता है कि किया तो यह गलत काम मगर लोगोपर छाप डालनेके लिए कि भाई हम तो बिल्कुल साफ हैं, जो मनमे होता है सो वचनसे कह देते हैं। खैर मायाचारकी बात तो न रखना चाहिए कि दूसरेके अहितके लिए जो मनमे विचारा है अथवा जो कुछ कायसे करनेका इरादा किया है तो वचनोसे अन्य तरह कहे, यह

बात तो न होनी चाहिए। कहना यह तो सही रहेगा ताकि वह थोडे समयमे अपने भाव बदलकर स्वच्छ हो जाय, पर उल्टा न कहना चाहिए। तो इन वचनविषयक सभी तथ्योका वर्णन इस सत्यप्रवाद नामके पूर्वमे किया गया है। इससे पद है १ करोड ६। इस तरह परिकर्मके ५ भेदोमे मे चौथा भेद जो पूर्वगत है उसमे ५ पूर्वोका अभी वर्णन हुआ।

(३२) आत्मप्रवादपूर्वमे नयप्रमाणसम्मत आत्मतत्त्वका वर्णन—यह समस्त आगम अरहत भगवानकी दिव्यध्वनिके मूलसे निकला है और गणधर देवने इसे गूथा है। जो गणधर देवने गूँथा वह उन्हीके द्वारा ही बोला जा सकता है। अथवा जो और ऋद्धिधारी मुनीश्वर हैं, जो श्रुतकेवलीसे परिचय है उनके द्वारा ही बोला जा सकता है। उस परम्परासे कुछ विषयोको आगममे बांधा है और शास्त्र रूपसे रचा गया है। तो मूल जो आगम है जिसे गणधरदेवने गूथा है उसकी चर्चा चल रही है। ११ अग और १२ वें अगके पूर्वगत भेदोमे ६ पूर्वोका वर्णन कल किया था। ७ वें पूर्वका नाम है आत्मप्रवादनामा पूर्व। इस पूर्वमे आत्माका वर्णन है। आत्मा कर्ता है अथवा नही, भोक्ता है अथवा नही, ऐसे अनेक धर्मोका निश्चय व्यवहारकी अपेक्षा वर्णन है। निश्चय देखता है एक ही पदार्थको, व्यवहार निरखता है भेदको, पर्यायको, घटनाको, सम्बन्धको। सम्बध कही असत्य नही है। कोई कहे कि जीव का और कर्मका सम्बध है, बधन है यह व्यहारनयसे जाना गया है इसलिए झूठ है, जीवके साथ कर्म बँधे नही है क्या ? बँधे हैं अन्यथा यह ससार अवस्था कैसे होती ? तो सबध है वह झूठ नही है। लेकिन एक द्रव्यको जब निरखते हैं तो बधन दिखता नही है। एक द्रव्यको निरखनेका नाम है निश्चयनय तो निश्चयनयसे जब देखते हैं तो दूसरा जब दिख ही नही रहा है तो बधन कैसे कहा जाय ? जैसे कोई एक ही फोटो देख रहा है हाथकी तो इसके मायने यह नही है कि दूसरा फोटो है ही नही, मगर वह एक ही फोटोको देख रहा है, वही उसके ज्ञानमे है, ऐसे ही निश्चयनय केवल एक द्रव्यको ही देखता है, अन्य द्रव्यको नही देखता है। यह उसकी एक कला है, और इसमे लाभ भी है कुछ मगर केवल एक अपने आत्मद्रव्यको ही देखे, अन्य कुछ न देखें तो इसके ज्ञानमे यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ही रुचेगा, और इस विशुद्ध उपयोगके कारण कर्मोका क्षय होगा। जहाँ हम अनेक द्रव्योपर दृष्टि डालते है तो विकल्प होते, व्यग्रता होती है, तो निश्चय नयसे निरखनेमे लाभ है मगर कोई व्यवहारनयको झूठ कहकर व्यवहारनयका निषेध करके निश्चयनयके विषयको ही माने तो वह मिथ्यात्व है। तो निश्चय और व्यवहारका उस निश्चय व्यवहारकी अपेक्षासे अनेक धर्मोका वर्णन आत्माके बारेमे आत्मप्रवादपूर्वमे है।

(३३) निश्चय व्यवहारनयसे अनेक धर्मोका आत्मप्रवादपूर्वमें वर्णन—जैसे कर्तृत्व का निर्णय करें, आत्मा कर्ता है या नही, तो आत्मा कर्मका कर्ता है, परका कर्ता है, यह

बात व्यवहारनयसे कही गई है। व्यवहारनयके मायने सबध बताना। जीवका और कर्मका निमित्त नैमित्तिक सबध है उस दृष्टिसे बताया गया है कि जीव कर्मका कर्ता है। उसका अर्थ निश्चयदृष्टिसे न लगाना, किन्तु व्यवहारनयसे कहा है तो व्यवहारदृष्टिसे ही अर्थात् निमित्त नैमित्तिक भावकी दृष्टि करके ही समझना कि जीव पुद्‌गलकर्मका कर्ता है, जिसका अर्थ यह होता है कि जीवके राग द्वेषादिक भावोका निमित्त पाकर पुद्‌गलकर्मका बंध होता है और निश्चयसे देखें तो जीव पुद्‌गलकर्मका तो कर्ता नही है, पर अपने ज्ञान भावका कर्ता है। शुद्धनयसे देखा गया तो जीव अपने भावोका कर्ता है इतनी भी बात नही रहती। वहाँ तो केवल एक अखण्ड तत्त्व ही ज्ञानमें आता है। यह विकल्प नही चलता वहाँ कि जीव अपने भावोका कर्ता है। इसी प्रकार भोक्ताकी बात समझिये। जीव भोजन आदिकको भोगता है यह कथन तो व्यवहारनयसे भी नही, उपचारसे है। जैसे कोई कहे कि जीव मकानको करता है तो वह उपचारसे है ऐसे ही जीव इन बाहरी पदार्थोको भोगता है, यह कथन उपचारसे है। और पुद्‌गलकर्मको भोगता है यह कथन व्यवहारनयसे है, क्योकि पुद्‌गलकर्मका उदय आया, पुद्‌गलकर्ममे ही अनुभाग बना और उसका प्रतिफलन आत्मामे हुआ तो यह तो निमित्तनैमित्तिक सबध है। तो यह व्यवहारसे कहा गया कि जीव पुद्‌गलकर्मका भोक्ता है और निश्चयसे देखा जाय तो जीव अपने ज्ञान परिणामको भोगता है। चाहे वह किसी विषय कषायमे भी हो उसको भी भोगना कहेंगे। तो अपने ही आत्माको भोगता है यह तो निश्चयनयसे कहा गया और पुद्‌गल कर्मको भोगता है यह व्यवहारनयसे कहा गया। भोजन आदिक पदार्थोंको भोगता है यह उपचारसे कहा गया। शुद्धनयकी दृष्टिमे यह भोक्ता ही नही है क्योकि वह निश्चयनयके विकल्पको भी स्वीकार नही करता। तो ऐसे नय विवरणके साथ आत्माके बारेमे वर्णन किया गया है आत्मप्रवाद पूर्वमे। इसमे पद २६ करोड है। आत्माकी बात जानना कितना मुख्य है और आत्माके बारेमे कितना विशेष वर्णन है कि इसके पद सभीसे अधिक हैं। २६ करोड पद अभी तक किसीके नही आये।

(३४) कर्मप्रवाद पूर्वमें कर्मविषयक तथ्योका वर्णन—८ वाँ है कर्मप्रवादपूर्व। कर्मप्रवाद पूर्वमे कर्मोके बारेमे वर्णन है, कर्म कोई कहने मात्रकी चीज नही है जैसे कि कर्म के संबधमे लोगोको भ्रम है। कोई कहता है कि जो किया सो कर्म है। जो भाव किया सो कर्म है, पर कर्मपुद्‌गल परमाणुओका पिण्ड है। जैसे एक पुद्‌गल स्कन्ध स्थूल है, आँखोसे देखते है पर कर्ममे पुद्‌गल भी स्कध है, अनंत परमाणुओके पिड है, किन्तु इतने सूक्ष्म हैं कि वे आँखोसे भी नहीं दिख सकते और वे वज्रसे भी नही छिड सकते। वे कार्माण वर्गणायें इस जीवके साथ कर्मरूपसे बध जाती है और उसमे निमित्त कारण है जीवका अज्ञानभाव।

जीवके रागद्वेष मोहका निमित्त पाकर ये कार्माण वर्गणायें कर्मरूप बध जाती हैं। इस ससारमे रहकर मौजसे रहना, स्वच्छद रहना यह विवेकी का कर्तव्य नही है। इस जीवके साथ विपत्ति तो लगी ही हुई है। कर्म बधे हैं, उनका उदय आता है। बाहरी पदार्थोंमे क्या मौज मानते ? आज किसी बाहरी पदार्थमे मौज माना, मान लो, पर उससे जो पाप कर्मका बध होगा उसका भी तो उदय आयगा फिर कष्ट पायगा। यो ससारमे रुलता रहेगा। आत्माके लिए सिवाय एक अपने आत्मस्वरूपके कोई भी सार तत्त्व नही है। अपना आत्मा अपनी दृष्टिमे रहे बस यह ही मात्र अपने लिए सारभूत बात है। तो यह कर्म प्रवाद पूर्वमे ज्ञानावरणादिक ८ कर्मोका वर्णन किया। उनका बध उदय सत्त्व बताया है। किस गुण-स्थान तक किसका बध होता है किस गुणस्थान तक किस प्रकृतिका उदय है, किस गुण-स्थान तक किस प्रकृतिका सत्त्व है, यह सब वर्णन कर्म प्रवाद पूर्वमे है।

(३५) **आत्महितके अभिलाषीको जीव और कर्मके तथ्यको जाननेकी अनिवार्यता**—जीवका श्रद्धान और कर्मका श्रद्धान ये दोनो बातें आत्महित चाहने वालोके लिए अवश्य जानना योग्य है। कोई पुरुष लुक छिप करके कोई अनुचित कार्य करें और ऐसा विश्वास रखे कि मुझे कोई नही देखता। मेरा कुछ भी बिगाड नही है, तो बात यह है कि बिगाड तो किसीके देखनेसे होता नही। अगर कोई देखता भी हो तो भी इसका कोई बिगाड नही। देखनेसे बिगाड नही होता और देखनेकी भी बात परखें तो यहाँ तो कोई दो चार आदमी देखने वाले हैं मगर इस अशुद्धता को तो अनन्ते सिद्ध भगवान देख रहे। तुम यहाँ दो एक की भी बात क्या कहते हो ? पर बिगाड अनन्ते सिद्ध भगवान देख रहे इससे भी नही और यहाँके मायामय दो चार पुरुष देख लें किसीको पाप करते हुए, उससे भी बिगाड नही, बिगाड तो यह है कि जैसे ही इसके भाव खोटे हुए वैसे ही तुरन्त उसी समय अनन्त कार्माण वर्गणायें कर्मरूपसे बँध गई। यह है बिगाड, यह है विपत्ति। बाहरमे कुछ विपत्ति नही। विपत्ति तो असलमे वह है जिसके कारणसे जीवमे कषायें जगती हैं। ये कषायें इस भगवान आत्मको हिला देती हैं, भव-भवमे भटकाती हैं। तो सदा सावधान रहना चाहिए। चाहे जगलमे हो, चाहे एकान्तमे हो, चाहे किसी जगह हो, जिस कालमें जीव अपने आपमे कषाय भाव बनायगा उस ही कालमे कर्मका बध होता है। कोई देखे या न देखे, इससे कुछ प्रयो-जन नही, यह तो एक निमित्त नैमित्तिक भाव है कि जीव कषाय करे तो कर्मबध होगा। उसका उदय आता है तब दुःख आता है।

(३६) **ज्ञानावरण व दर्शनावरणकर्मके विपाकोदयकी रीति**—कर्मोंका उदय अनेक ढगोसे आता है याने कर्मोदयका फल अनेक ढगोसे मिला। जैसे ज्ञानावरण कर्मका उदय

आया तो ज्ञान प्रकट नही हो पाता। वहाँ क्या बात है, कैसी कला है, इसको अधिक वचनो से कोई ब्योरा नही दे सकता, मगर ज्ञानावरण कर्मका उदय होवे तो उनका ज्ञानगुण प्रकट नही होना, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग हैं। दर्शनावरण कर्मका उदय होने पर दर्शन-गुण प्रकट नही होता। इन दोनोमे ही यह बात तो जानियेगा ही कि जो ज्ञानावरणका उदय है, दर्शनावरणका उदय है। घातिया कर्मका जिसका भी उदय है वह सब आत्मामे प्रतिफलित होता है, छा जाता है और ज्ञानस्वभाव उससे ढक जाता है। जैसे दर्पणके सामने कोई नीली पीली चीज रखी है तो उसका ऐसा प्रतिबिम्ब होता है कि वह दर्पण सारा ढक जाता है। प्रतिबिम्बसे ढक गया, अब उस दर्पणमे स्वच्छता झलक नही रही। शक्तिमें स्वच्छता पडी है। भीतर स्वभावमे स्वच्छता ज्यो की त्यो है। मगर दशा देखें तो सारा दर्पण फोटोसे रंगा हुआ है। स्वभाव अब भी नही मिटा।

(३७) **कर्माक्रान्त होनेपर भी ज्ञानस्वभावकी सतत सम अन्तःप्रकाशमानता**—जैसे दर्पणका स्वभाव मिट गया हो तो फोटो आ ही न सकता था। कही भीत आदिक पर तो फोटो नही आती। दर्पणमे ही प्रतिबिम्ब आता है। स्वभाव नही मिटा कही। जब फोटो आ रही है उस वक्त भी स्वभाव अतः प्रकाशमान है—उस कांचका, नहीं तो फोटो समाप्त हो जाय, ऐसे ही जिस कालमे कर्मोका उदय है उन कर्मोंके उदयसे फोटो प्रतिबिम्ब प्रति-फलन आकार आ गया, छा गया वह सब कर्मरस। अब उस कर्मरसके छा जाने पर आत्मा के गुण स्वभाव प्रकट नही होता। ढक गया। यहाँ इतनी बात है कि ढक जाने पर भी कोई न कोई अशमे थोडा बहुत ज्ञान प्रकाश हर एकके रहता है। तो ढक गया ज्ञानस्वभाव मगर ज्ञानस्वभाव अनः प्रकाशमान है जीवमे। अगर जीवमे, ज्ञानस्वभाव मिट जाय तो वह कर्म भी प्रतिफलित नही हो सकता। कहाँ फोटो आये, कहाँ कर्मरस झलकेगा? जैसे किसी जीवको रागद्वेष करता हुआ निरखकर झट समझ लेते है कि इसमे चेतना है। अगर चेतना न होती तो रागद्वेष भी यह कैसे कर पाता? तो कर्मोदय एकदम आक्रान्त हो जाय तो भी आत्माका ज्ञानस्वभाव अलग नही होता, सतत, अत प्रकाशमान है। जैसे कितनी ही फोटुओसे प्रतिफलित हो जाय दर्पण, तो भी दर्पणमे स्वच्छता निरन्तर अन्तःप्रकाशमान है। वहाँ इतना भी नही है कि एक समयको दर्पणमे स्वच्छता न रहे फिर आ जाय। एक समयको न रहे तो कभी न रहा, तो ऐसे इस ज्ञानस्वभावका आवरण करने वाले इस चैतन्य विकासका आवरण करने वाले ये सब कर्म हैं।

(३८) **वेदनीयकर्मके विपाकोदयकी रीति**—वेदनीयका उदय आता है तो उसकी एक कला है उदयकी, ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि साताका उदय होने पर जिन बाह्य

पदार्थोंको पाकर यह जीव साताका विकल्प करे, ऐसी चीज अपने आप मिल जाती है। आ जाती है। जगतमे जीव तो सब एक समान है किन्तु यह अन्तर किस बातका आया कि कोई श्रीमान् है और कोई दरिद्र है, यह सब साता असाताके उदयका अन्तर है। वेदनीय कमके उदयके दोमुखी काम है। इष्ट अनिष्ट पदार्थोंका सग मिल जाना और इन्द्रियके द्वारा सुख और दु खका वेदन कराना। वेदनीय कर्म इस प्रकारसे अपना फल हाजिर करते है। मोहनीय कर्म यह सब कर्मोंका राजा है। अगर मोहनीय उदयमे नही आ रहे तो सब तरहके कर्म उदयमे आयें तो भी जीवका कुछ बिगाड नही, पर ऐसा है कहाँ ?

(३९) **मोहनीय व आयु कर्मके विपाकोदयकी रीति**—मोहनीय कर्मका उदय है जिन ससारियोके तो क्या होता है कि इसका नाच हूबहू दो जगह चल रहा है। कर्ममे तो कर्मके अनुभागका नाच चल रहा और उसका फोटो अक्स ज्ञेय जीवमे आ रहा। यह भी नाच चल रहा और इस नाचमे तो यह जीव अज्ञानी बनकर अपनी सुध भूलकर यह बाह्य पदार्थोंमे लग जाता है और दु खी रहता है। तो मोहनीय कर्मका उदय इस तरह दिखता है जैसे कि कर्म तो नाच रहा है और यह जीव समझ रहा कि मैं नाच रहा, ऐसा ही अज्ञान बसा हुआ है। तो इस मोहनीयका भी बंध कहाँ तक है ? सत्त्व कहाँ तक है। और किस-किस प्रकारसे है, यह बहुत बडा भारी वर्णन है। आयुकर्म इसके उदयका फल देनेका ढग ही और है। जब तक आयुकर्मका उदय चल रहा है तब तक जीव उस शरीरमे ठहरा रहता है। उसका उदय समाप्त हो जाय किसी भी ढगसे अपने समयपर या कोई आकस्मिक घटना होनेपर जीव फिर शरीरमे नही रह पाता। फिर जिस आयुका उदय होगा उस शरीरमे जाकर पैदा हो जाता। यह जीवका ऐसा बधन है।

(४०) **नामकर्मके विपाकोदयकी रीति**—नामकर्मके उदयमे नाना प्रकार शरीरोकी रचना हो जाती है। समयसारमे बताया है कि एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदिक, बादर सूक्ष्मादिक, पर्याप्त अपर्याप्त आदिक ये सब नामकर्मसे रचे गए हैं। नामकर्मके उदयका निमित्त पाकर यह शरीर स्कध बन जाता है, यह भी तथ्य है मगर इन शब्दोमे न कह कर इन शब्दोमे कहा गया है कि ऐसी ये नामकर्मकी प्रकृतियाँ है उनके द्वारा यह शरीर रचा गया है। इसमे कुछ ऐसा लगता है कि नामकर्मकी जिन प्रकृतियोका उदय होता है वे प्रकृतियां कुछ काल शरीर वर्गणाओके साथ मिलकर उस रचावमे आता है और इसके शरीर वर्गणाओके परमाणु तो स्थिरतया रहते हैं। जब तक कि शरीर है और वे नामकर्मकी प्रकृतियां सूख जाती, उड जाती। कुछ क्षणको ऐसा स्पर्श होता होगा कि उदयसे च्युत होकर कुछ क्षणको स्पर्श करके फिर वे बिघटती है। उदय होनेके बाद एक क्षण भी नामकर्मकी प्रकृति नामकर्म नही कहलाती। उदय

हो चुका और उसका निमित्त पाकर शरीरकी रचना बन रही, मगर कुछ स्पर्श उनका रहता है तब ही तो बडे जोरपूर्वक ऐसा कहा गया है कि ये सब नामकर्मके द्वारा रचे गए हैं। लोकमे ऐसा देखा जाता कि घडा नो बनता है मिट्टीका, पानीका नही बनता, मगर कुछ समय उसके साथ पानी मिला हो तो घडा बन पाता है। घडा बननेके बाद पानी सूख जाता है। उस पानीका अश भी नही रहता। मगर प्रारम्भमे उस पानीका सम्पर्क होनेसे मिट्टी अपनेमे घडेका रूप रख पाती है। फिर पानी सूख गया। तो यद्यपि घड़ा मिट्टीसे ही बना, पानीसे नही बना, मगर ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि पानीका कुछ सम्पर्क हो तो घडा बननेका काम बने। नामकर्मके द्वारा रचा गया है यह शरीर। इस शब्दसे ऐसा सभव हो सकता है कि उदय होकर यह कर्मप्रकृति तो नही रहती, मगर कुछ काल यदि अल्प काल मे उन शरीर वर्गणाओसे स्पर्श करे, फिर यहांसे भी हट गया। इस तरह नामकर्मका विपाक चलता है।

(४१) **गोत्र एवं अन्तरायकर्मके विपाकोदयकी रीति व कर्मप्रवादके पदगणनाका निर्देश**—गोत्र नामका विपाक—इसके उदयका निमित्त पाकर जीवमे यह व्यवहार बना कि यह उच्च कुलमे पैदा हुआ, यह नीच कुलमे पैदा हुआ। इस तरह गोत्रकर्मका उदय चला, और अन्तराय कर्मका उदय होनेपर यह जीव दान लाभ भोग उपभोग शक्तिविकास आदिक नही कर पाता। दान देनेके भाव होकर भी दान नही दे सकता। दातार सोच ले कि देना है दान फिर भी दान देते समय रुक जाता है, दान वापिस आ जाता है, यह है दानान्तरायके उदयका फल। कितने ही लोग ऐसे हैं कि जो यह कहते हुए पाये गए कि भाई मैं अपने हाथ से तो नही दे सकता, मगर आप लोग जबरदस्ती उठाकर ले जावो। ऐसा अपने आप मुखसे बोलते है। यह क्या है ? यह दानान्तराय कर्मका विपाक है। ऐसे ही लाभ भोग उपभोग वीर्य, ये भी प्रकट नही हो पाते, ये अन्तरायके विपाक है। तो ऐसे कर्मके विपाक बध सत्त्व, इनका वर्णन अनेक विधियोसे इस कर्मप्रवाद पूर्वमे किया गया है। इसमे पद हैं १ करोड ८० लाख।

(४२) **प्रत्याख्यानपूर्वके विषय व पदगणनाका निर्देश**—गणधरदेवके द्वारा लिखे गए १२ अङ्गोमे यह १२ वें अगका प्रकरण चल रहा है। दृष्टिवाद अङ्गके ५ अधिकार है। परिकर्म, प्रथमानुयोग सूत्र, पूर्वगत और चूलिका, जिनमे पूर्वगतका वर्णन चल रहा है। पूर्व १४ होते हैं, जिनमे ८ पूर्वोका वर्णन हो चुका। ९ वाँ पूर्व है प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यानका अर्थ है त्याग। प्रत्याख्यानावरण प्रधान बने, प्रत्याख्यानका आवरण करे उसे प्रत्याख्यानावरण

करते है । प्रत्याख्यान मायने पापका त्याग । पापोके त्यागका अनेक प्रकारसे वर्णन है । पाप कितने होते हैं, इनकी कोई सख्या नियत नही है । पाप तीन होते है—(१) मनसे किए हुए, (२) वचनसे किए हुए, (३) कायसे किए हुए । पाप ६ होते है—(१) मनसे किए हुए, (२) मनसे कराये गए और (३) मनसे अनुमोदे, गए, (४) वचनसे किए हुए, (५) वचनसे कराये हुए और (६) वचनसे अनुमोदे हुए, (७) कायसे किए गए, (८) कायसे कराये गए और (९) कायसे अनुमोदे गए । पाप २७ होते हैं– इन ९ से संकल्प किए गए, इन ९ से पापके साधनो को जोडा गया और इन ९ से पापका प्रारम्भ कर दिया यो ९ × ३ = २७ पाप होते है । पाप १०८ होते हैं—ये २७ पाप क्रोधमे बन रहे हो, मानसे बन रहे हो, मायाचारसे बन रहे हो और लोभसे बन रहे हो, ऐसे ये १०८ प्रकारके पाप हैं । इनका और भी विस्तार हो सकता है । तो इन अनेक प्रकारके पापोको अनेक विधियोसे त्याग करनेका वर्णन इस ९ वें प्रत्याख्यानपूर्वमे है । पापके त्यागकी विधि क्या है ? तो विधि तो एक ही है । अपने सहज अविकार चैतन्यस्वरूपमे अपने सत्त्वका अनुभव करना मैं यह हू । एक ही विधि है पापोके त्यागकी । पर यह बात जिनसे न बन सके उनके लिए अनेक विधियां है व्रत करें, नियम दें, तप करें । अमुक सयमसे रहे, उनके लिए अनेक विधान हैं । पर उन सब विधियोमे यदि इस प्रधान विधानकी सुध है तो मोक्षमार्ग चल रहा, और अगर इस प्रधान विधिकी सुध नही है, अविकार आत्मस्वरूपकी सुध नही हैं तो वह कुछ पुण्यबध कर लेता है मगर मोक्ष-मार्ग नही मिलता । इस प्रत्याख्यान पूर्वमे ८४ लाख पद है ।

(४३) विद्यानुवादपूर्वमे विद्यासाधनोका विषय—१०वां पूर्व है विद्यानुवाद । इस पूर्वमे ७०० छोटी विद्याओ और ५०० बडी विद्याओका स्वरूप बताया गया है । इन विद्याओ की साधना किस तरह होती है और इनका यत्र क्या है और सिद्धि हुए बाद इसका फल क्या मिलता है ? यह सब वर्णन इस विद्यानुवाद पूर्वमे है और अष्टाग धर्मका वर्णन इस विद्यानु-वाद पूर्वमे है । कौनसी घटना देखकर गए उसका फल है, यह सब वर्णन विद्यानुवाद पूर्वमे है । जो मुनि इस विद्यानुवाद पूर्वकी सिद्धि कर लेता है और आनन्द जगता है वह मुनि १० पूर्व विद कहलाता है, यह एक ऋद्धि होती है । अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव ९वें पूर्व तक ही क्यो रहते हैं, हैं वे मुनि ऊँचे । उनका तपश्चरण अच्छा, ज्ञान भी बहुत, साधना अच्छी, पर कुछ मिथ्यात्वका अश रह गया है जिसके कारण वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है । ऐसे मुनि ९वें पूर्व तक ही क्यो रहते ? आगे बढते तो हैं और विद्यानुवादकी साधना भी करते हैं, पर किसीको सिद्ध नही होता और किसीको कुछ थोडा थोडा सिद्धसा होने लगता है, तो वे विद्यायें आती है और अपना सुन्दर रूप दिखाती है और उनकी आज्ञा मानती हैं । आपका

जो हुकुम हो सो करें, उस समय वे अपने परिणामसे डिग जाते हैं, चिग जाते हैं वे आगे बढ नही सकते। जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि मुनि हैं, वे अनेक विद्यायें भी आयें, बडा निवेदन करें कि जो चाहो सो हम काम करें, लेकिन वे कुछ भी फल नही चाहते इसलिए वे साधु और भी आगे बढ़ते है। वे ज्ञानी हैं।

(४४) धर्मसाधनाके फलमे लौकिक सुख चाहनेकी महापराधरूपता—भैया, धर्म-साधना करके कोई फल चाहना यह एक बहुत बड़ी तुच्छता है, मिथ्यात्व है। चाहनेका तो मनुष्य कीडा बन रहा है। जब चाहे जिस चीजकी चाह कर बैठता है, पर किसी चीजकी चाह करना एक महान् अपराध है। वैसे घर गृहस्थीके बीच रहकर किसी चीजकी चाह करना उतना बडा अपराध नही माना गया, पर धर्म करनेके एवजमे कोई सासारिक फलकी चाह करना यह भारी अपराध है। कोई अगर यह माने कि अमुक तीर्थमे जानेसे यह फल मिलेगा तो यह इसका कोरा भ्रम है। कोई भी तीर्थस्थान किसीको कुछ सासारिक फल नही देता मानो कोई मानता कि महावीरजी जानेसे धन मिलेगा तो उसका यह ख्याल मिथ्या है। क्योकि जिन देशोमे मान्यता नही है महावीरजी की जैसे अमेरिका, इग्लैण्ड, रूस आदि, वहाँ पर भी तो एकसे एक बड़े धनिक देखे जाते। अरे जिसे जितना जो कुछ धन वैभव मिला वह सब पूर्व पुण्य प्रतापसे मिला, अब उसकी कुछ आशा करके, उसकी इच्छा रखकर जो पाप कमाये जा रहे है उसके फलमें दुर्गतियोमे जन्म मरण करना होगा। मान लो धर्म करनेके एवजमे किसीको अच्छा फल मिल गया तो कही चाहनेसे नही मिला, वह सब पूर्वकृत पुण्यका फल है। आत्मसाधना तो निरीह भावसे करना चाहिए। किसी प्रकारकी वाञ्छा नही, बस प्रभुका (वीतराग सर्वज्ञदेवका) स्वरूप चिन्तन चल रहा है। जगतमे कही सार नही है सो प्रभु जगतके अणु अणुको त्यागकर अपने आत्मामे लीन हुए हैं, और ऐसा जो ध्यान करेगा वह क्या लोककी इच्छा करेगा? वह भी उसी ढंगसे चलेगा। तो धर्मधारण करके जो फल प्राप्त हुआ है पूर्व पुण्यसे उसको यो मानना कि इस धर्मके कारण हुआ है, यह धर्मकी महिमाको घटा देता है। धर्मका फल तो इससे ऊँचा है। यह तो बाह्य भिन्न वैभवो का संयोग मिल गया है, उससे जीवका क्या बनता है?

(४५) तृष्णारहित होकर धर्मसाधनामे निराकुलताका योग्य—जो विवेकी जन है उनमे एक यह गुण होना है कि वे तृष्णा नही करते। परिग्रहके सग्रहमे लम्पटता नही रखते। कर्तव्य करना है तो कर्तव्य करनेके नातेसे जो कुछ सुगमतासे बन जाय उसमे ही वे प्रसन्न रहते है। यह गुण ज्ञानी पुरुषमें होता है जिसके कारण गृहस्थीमे रहकर भी वे अनाकुल रहते हैं। चिन्ता क्या है? कार्य करते करते भी यदि नुक्सान चल रहा है या कुछ बिगड़

गया है तो यो समझो कि परिवारमे रहने वाले लोगोका भाग्य अच्छा नही है इसलिए नही धनार्जन हो रहा। आपका भाग्य उसमे खोटा नही, क्योकि खुद तो ज्ञानमात्र हैं, अकेले है। अपने स्वरूपमे रहे, रमे, इसमे तो जिनके भाग्यमे कमी आयी उनका भाग्य खोटा है और वे परजीव है। उन्हे हम कुछ कर नही सकते। कितने ही चिन्तन हैं ऐसे जो इसको अनाकुल रखते है।

(४६) विद्यानुवाद पूर्वके विषयका उपसंहार व पदगणनाका निर्देश—विद्यानुवाद पूर्वमे विद्या सिद्ध होती है और वह हुक्म चाहती है। भला हजार बारह सो जहाँ विद्यायें सिद्ध हो जायें और वे आकर हर प्रकारसे आत्मसमर्पण करें कि आप आजसे हमारे मालिक है, जो आप चाहे सो कर लीजिए, इस बातमे जो चिग गया वह ससारमे गया और वहाँ जो नही चिगता, एक अपने आत्माका ही ध्यान अभीष्ट है वह संसारसे पार हो जाता है। इस विद्यानुवाद पूर्वमे १ करोड १० लाख पद हैं।

(४७) कल्याणवाद पूर्वमे गर्भकल्याणसम्बंधित विषयोका प्रतिपादन—११वें पदका नाम है कल्याणवाद। इसमे कल्याणका वर्णन है। जो मगल है, भली भली बातें है उन सबका प्रतिपादन है। तीर्थंकरके गर्भकल्याणक आदिकका चक्रवर्तीके यथोचित उत्सवोका तीर्थंकर प्रकृतिके बधके कारणभूत सोलह भावनाओका यह सब विशेषतया वर्णन है। तीर्थंकर के पचकल्याणक होते है। इतना उनके विशिष्ट पुण्य है कि गर्भमे वे नही आये अभी। इस समय या तो स्वर्गादिकमे है या नरकमे है। गर्भमे नही आये अभी, पर गर्भमे आनेसे ६ महीने पहलेसे ही रत्नवर्षा होती है। पंचकल्याणक वाले तीर्थंकर या तो नरकसे आकर जन्म लेते है या स्वर्गसे आकर जन्म लेते हैं। जिनका पचकल्याणक होता है वे तीर्थंकर मनुष्यभव से नही पहुचते और तिर्यञ्च भवसे भी नही पहुचते। तो जो नरकसे आकर तीर्थंकर होते हैं तो उनको आयुसमाप्तिसे ६ महीने पहले देव जाकर उनके चारो ओर कोट बनाते है। कोई नारकी वहाँ न पहुचे, इसकी सारी व्यवस्था रहती है, कोई इन्हें पीटे मारे नही, इससे पहले तो पिट रहे थे, पीट भी रहे थे, मगर जबसे गर्भकल्याणक मनाया जा रहा तबसे उनकी सेवा के लिए देव पहुचते है। ६ महीना वे बाहरी उपद्रवोसे दूर रहते है, नही तो यह बडी विडम्बना बने। अगर देव वहाँ न पहुचें और नारकियोसे, कोट वगैरहसे रक्षा न करें तो यहाँ तो बरस रहे रत्न और वहाँ वे पिट रहे, जिसका गर्भकल्याणक मनाया जा रहा वह जीव पिट रहा तो यह कोई तुक तो नही मिला। तो ६ महीना पहलेसे रत्नवर्षा होती है और ६ महीना आयु जब रह गई नारकीकी, जिसको तीर्थंकर बनना है, उसकी देव रक्षा करते हैं और जो स्वर्गोसे और ऊपरके ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तर आदि विमानोसे उतरकर जन्म लेते

हैं । फिर गर्भसे ६ महीना पहलेसे गर्भकल्याणक मनाया जाता है । १५ महीने तक उत्सव समारोह मनाया जाता है । यहाँ मनुष्योमे तो ज्यादहसे ज्यादह कोई ७ महीनेसे गर्भमे हो तब समारोह मनाते हैं, कुछ लेन देन करते, भेजते, पर तीर्थंकर प्रभुका गर्भसे पहले ही समारोह मनाते हैं । देवियाँ आकर सेवा करती है, ६ बड़ी देवियाँ, ५६ कुमारियाँ जिनकी सेवा करती है ।

(४८) **कल्याणवादपूर्वमे जन्मादि कल्याणसम्बन्धित विषयोंका निर्देश**—जन्म जन्माणकमे बहुत बडा समारोह इन्द्र देव अपनी पूरी ताकत लगाकर उस समय समारोह मनाता है । तपकल्याणकमे भी बडा वैराग्यमय समारोह मनाते, सबके भाव भीग जाते हैं । देव और इन्द्रके भी भाव भीगने लगते हैं । उनके साथ अनेक महाराज दीक्षा ले लेते है । थोडा ऐसा सोचना तो चाहिए कि हम कितना बुद्धिमान है, पहले हमसे भी बडे-बडे बुद्धिमान धनी राजा पुरुष भरी जवानीमे सर्व कुछ वैभव त्यागकर धर्मसाधना करते थे, तो कुछ सार तो समझा था उन्होने धर्ममे और बाहरी वैभवोको असार और हेय तो समझा था उन्होने । यहाँ असार और हेय न समझें तो कमसे कम इतना तो करें कि उसकी अधिक तृष्णा तो न रखें । अधिक तृष्णा रखनेसे लाभ भी कुछ नही । कर्तव्य है गृहस्थोमे कि धर्म, अर्थ और कामका समान साधन करें । तो तपकल्याणक, ज्ञानकल्याणक । जब प्रभुको केवलज्ञान हो जाता है इस समयकी खुशियाँ भी बडी विचित्र होती हैं । प्रभु बन गए, वीतराग सर्वज्ञ अरहंत सकल परमात्मा, इनका दर्शन मिलना एक बहुत ऊँचे भाग्यकी बात है, फिर दिव्यध्वनि सुननेके आनन्दका तो कुछ कहना ही क्या है ? बड़ा समारोह मनाते है । समवशरणकी रचना होती है । मोक्षकल्याणकके समय यह भी एक उत्कृष्ट दृश्य है । उस समय बात तो खुशीकी हुई कि भगवान सदाके लिए मोक्ष गए, मगर कितने ही लोग बडा विषाद भी मानते होगे । हमे रोज-रोज मिलते थे, दर्शन होते थे, अब यह सदाके लिए गए । आखिर कुछ प्रीति तो हो ही जाती है । तो उस वक्त खेद करने वाले भी बहुतसे लोग होगे और जो उनके माता-पिता वगैरह कोई हो या उनके प्रधान शिष्य हो उनको तो बडी विरक्ति भी और खेद भी होता है । मगर मोक्षकल्याणकसे बढकर और खुशीका कोई काम नही है । सदाके लिए सर्व सकटो से छूट गया और अपने आपके अनन्त आनन्दमे वह लीन हो गया । पूर्ण पवित्रता आ गई, अब रच भी चिगना नही होता । धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्यकी तरह निष्क्रिय, निश्चल, निस्तरग, बस एक ज्ञानज्योति, सारा लोकालोक ज्ञानमे आ रहा, पर फोकट । किन्तु जानते भगवान सबको । उन्हे भी क्या लाभ और हमे भी क्या लाभ ? उनके बजाय हम आप जानते होते तो कितने ही काम कर डालते । पर जो काम करनेकी धुन रखते हैं उन्हे ज्ञान नही होता

और जो सर्व कार्योंसे विराम लेते है उनको ज्ञान बढता है । कृतकृत्य है, सब कुछ ज्ञानमे आ रहा, मगर रंच भी खेद नही, रंच भी हर्ष नही । तो ऐसे कल्याणका वर्णन इम ११वें पूर्व मे है ।

(४६) **कल्याणवादपूर्वमे तीर्थंकरप्रकृतिबधके कारणभूत षोडश भावनावोका वर्णन व पदगणनाका निर्देश**—उस तीर्थंकर प्रकृतिके बधके कारणभूत १६ भावना व सम्यग्दर्शन है और सर्व जीवोके प्रति सद्भाव बनाता है कि सब दु.खी हैं, केवल एक अपना ज्ञान न होने से । इन सबको ज्ञान प्रकट हो और इन सबका खेद दूर हो, ऐसी बडी कृपाकी भावना होती है । उनमे विनय सम्पन्नताका मुख्य गुण है । कबसे बात कर रहे हैं ? तीर्थंकर होनेसे पहले भवकी बात, जिस भवमे तीर्थंकर प्रकृति बँध गई, श्रावक हो वह भी तीर्थंकर प्रकृति बांध सकता, मुनि हो वह भी बांध सकता, श्रावक भी न हो, अविरत सम्यग्दृष्टि हो चतुर्थ गुण-स्थान वाला, वह भी तीर्थंकरप्रकृतिका बंध कर सकता । अज्ञानी नही कर सकता । धर्मात्मा को निरखकर, ज्ञानीको निरखकर ऐसा अन्दाज होता है कि जितना आह्लाद अपने परिवार को देखकर नही होता । ज्ञानीकी महिमा ही अलग है । परिवार तो ज्ञाता दृष्टा रहता । एक कर्तव्यके नातेसे सब कुछ करता, पर धर्मात्मा जनोंके प्रति उसका वात्सल्य विशेष रहता । जब कि अज्ञानियोकी वृत्ति होती है धर्मात्माओसे उपेक्षा और परिजनोसे प्रीति करनेकी । ज्ञानी पुरुषकी वृत्ति अज्ञानियोंसे विपरीत होती है । गृहस्थीमे रहनेके नातेसे वह सब व्यवस्था बनाता फिर भी परिवारके लोगोके प्रति उसका आकर्षण नही रहता । उसका आकर्षण रहता है रत्नत्रयके धारण करनेका जिसके मनमे जिसकी धुन है उसको देखकर वह आकर्षित हो ही जाता है । ज्ञानी पुरुष तो विनय सम्पन्नता या शीलव्रत धारण आदिके जो संकल्प बनाता है उनमे वह दृढ़ रहता है । वह निरन्तर ज्ञानमे उपयोग रखता है । ज्ञानस्वरूप मैं हू । यह ज्ञान ज्ञाता ही रहे, यह ही मेरी पवित्रता है । यह ही तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करने वाली भावना है । उनका सम्वेग भाव, धर्मात्मा जनोमे अनुराग और ससार शरीर भोगोंसे उपेक्षा, यथाशक्ति त्याग और यथाशक्ति तपश्चरण । लोग यथाशक्तिका अर्थ क्या लगाते कि यथाशक्ति करना मायने तुम्हारी जितनी शक्ति है उससे कई गुना कम करो, थोडा करो, पर यथाशक्तिका यह अर्थ नही है । किन्तु यथाशक्तिका अर्थ है कि अपनी शक्ति न छिपाकर पूरी शक्तिसे काम करो तो यथाशक्ति त्याग, यथाशक्ति तप, उनकी वृत्ति होती है जिनके तीर्थंकर प्रकृतिका बंध हो रहा । साधु जनोकी सगति, समता परिणामकी प्रशसा, उनके साम्य भाव की सिद्धिके लिए हर प्रकारके आयोजन, उनकी वैयावृत्ति करना, अरहतकी भक्ति करना, बहुत ज्ञानी हो उनकी भक्ति करना, आगमकी भक्ति करना, जो आवश्यक कर्तव्य हैं उनको

बार बार किया जाना, जैनधर्मकी प्रभावना करना, आगममे धर्मात्मा जनोमे वात्सल्यभाव रखना ऐसी कुछ सद्भावना है कि जिससे तीर्थंकरप्रकृतिका बध होता है । तो यह सब वर्णन कल्याणवाद पूर्वमे है । कल्याणकसम्बन्धित विषयोके अतिरिक्त चन्द्र सूर्यका गमन कैसे होता है और उनके कारण कौन-कौन सगुन असगुन कल्याण है यह भी वर्णन इस पूर्वमे है । इसमें हैं २६ करोड पद ।

(५०) **प्राणवाद पूर्वमे वैद्यक सम्बन्धी विषयोंका निर्देश**—१२वाँ पूर्व है प्राणवाद । इस प्राणवादपूर्वमे वैद्यक सबधी बातोका वर्णन है । आज लोकमे जितने भी शास्त्र है, आगम हैं मतमतान्तर है उनका वर्णन वे लोग अच्छा नही कर सके जितना वर्णन द्वादशांग मे पडा है । खोटी बातोका वर्णन, खोटे धर्मोका वर्णन, सभी बातोका वर्णन इस द्वादशाङ्ग मे है । जो जैन शासनमे नही है वह कही नही है, पर उनका वर्णन वस्तुस्वरूप बतानेके लिए है, श्रद्धा करानेके लिए नही है । तो वैद्यकका भी वर्णन इस प्राणवाद पूर्वमे है । कैसे चिकित्सा करना, कैसे निदान करना, किन-किन औषधियोमे क्या-क्या गुण है ? अभी वैद्यक शास्त्र बहुत हैं मगर जैन वैद्यकशास्त्र तो देखो हमने एक बार देखा था । उनमे किस-किस ढगसे वर्णन है । प्रारम्भ किया है उसमे पूर्वभवसे और है वैद्यकशास्त्र जन्म हुआ । जाति-स्मरणका वर्णन किया और पूर्वभवके सस्कारका किस प्रकार यहाँ एक प्रभाव रहता है उसका वर्णन किया क्योकि रोगनिदान औषधि इन सबमे यह भी काम आता है । फिर ऐसा क्रमसे वर्णन है कि जो क्रम जैनाचार्योकी कृतियोमें है ।

(५१) **प्राणवाद पूर्वमे भूतव्याधि, विषचिकित्सा व स्वरोदयके फलका वर्णन व पदगणनाका निर्देश**—वैद्यकमे भूतादिक व्याधियोका भी वर्णन है यह भी एक व्याधि है कि किसीको भूत लगे, अब वह भूत लगना दो तरहका है । एक तो दिलमे भूत बना लिया, अपनी कुछ कल्पना कर डाला । तो यह व्याधि दूर करनेके मन्त्र आदिकका वर्णन इस प्राण-वाद पूर्वमे है, और विष भी रोग है । सर्पका विष, अन्य विष, तो इस विषके दूर करनेका भी उपाय इस प्राणवादमे है । स्वस्थ होनेका एक उपाय स्वरसाधना भी है और स्वर उन व्याधियोके बतानेका उपाय है । इगला, पिंगला, सुषम्ना आदिकके सहारेसे दूसरे रोगोका शुभ अशुभ बताया जा सकता । नाकके दाहिने छिद्रमे वायु है या बायें छिद्रसे वायु निकल रही या दोनोसे निकल रही, या कुछ ऊपर होकर निकल रही या नीचेसे निकल रही या कितने अंगुल तक निकल रही, इन सबका विचार करके दूसरेका शुभ अशुभ बताया जाता है । तो स्वरोदयका भी इस १२वें पूर्वमे वर्णन है । इसमे १२ करोड पद है । पूर्वका वर्णन बहुत विशाल है, इसीलिए ऐसा कह दिया जाता कि ये १४ पूर्वके ज्ञानी है, ये १० पूर्वके

ज्ञानी हैं। उसका अर्थ यह लिया जाना चाहिए कि ११ अङ्ग तो जानते ही हैं मगर इन पूर्वोंको भी जानते हैं।

(५२) **क्रियाविशालपूर्वमें सगीतविधानोंका वर्णन**—दृष्टिवाद अङ्गके पूर्वगत नामके अधिकारमे जो पूर्वोंका वर्णन चल रहा है उसमे १३ वां पूर्व है क्रियाविशाल। क्रियाविशाल नामक पूर्वमे अनेक क्रियावोका वर्णन है और वे क्रियायें कला सहित हैं। तो कला और क्रिया इन सभीका वर्णन इस पूर्वमे है। जैसे संगीत शास्त्र यह भी एक क्रिया है। सगीत शास्त्र एक ऐसी क्रिया है कि जिसके आधारसे यह जीव ध्यान और धार्मिक प्रेरणाओमे बढता है। संगीतशास्त्र मुख्यतया धर्म साधनाका अङ्ग मानकर चला था लेकिन धर्मप्रेमी जीव रह गए कम, रागप्रेमी हो गए अधिक तो उन्होंने सगीतको रागमे ढाल लिया। पहले समयमे जितने सगीत हुआ करते थे वे धार्मिक योजनाओमे चलते थे और इसी कारण संगीतका बडा आदर था। ऊंचे ऊँचे ग्रन्थोमे भी सगीत शास्त्रका वर्णन चलता था। एक सरस्वतीको फोटो लोग बनाते हैं कि सरस्वती देवी तालावके बीच कमलके ऊपर बैठी है। उसके नीचे हस बैठा है और उस देवीके चार हाथ हैं, एक हाथमे पुस्तक है, एक हाथमे वीणा है। एक हाथमे माला है, एक हाथमे मानो शख है। तो उसमे जो वीणा दिखाई गई है और सरस्वती देवीकी वीणा ही मुख्य है। न भी चार हाथ दिखाया हो फोटोमे तो भी वीणा अवश्य दिखाई जाती है। तो वह सरस्वतीकी जो वीणा है उस वीणासे यह सकेत मिलता है कि धर्मध्यानके लिए, ज्ञानप्रकाशके लिए सगीत बहुत प्रधान अच्छा उपाय है जिसमे लोगोको दिल भी लगे और धर्मकी बात भी सीखें। क्रियाविशाल पूर्वमे सगीत शास्त्रका वर्णन है।

(५३) **क्रियाविशालपूर्वमें छन्द अलंकारादिका वर्णन**—इसी पूर्वमे छद कैसे बनाये जाते ? सस्कृत या अन्य-अन्य भाषाओके छद मात्र गण तुक सतुलन आदिक सभीका भले प्रकार वर्णन है कि छद शास्त्र इस तरह रचे जाते हैं। संगीतका और छदोका बड़ा सबध है। सगीत गायन पर ही होगा और गायन शुद्ध होगा तो सगीत ठीक चलेगा और गायन शुद्ध वही कहलाता है कि जहाँ मात्र गण आदिक सब ठीक होते हैं। तो इस क्रियाविशाल पूर्वमें छदका भी पूरा वर्णन है। अलकार आदिक जैसे महिलाओ अथवा पुरुषोकी शोभाके लिए शृंगारके लिए कई प्रकारके अलकार होते हैं कोई सोना चाँदीके होते तो कोई केवल एक चित्रके होते, जैसे चदन लगाया या अन्य जगह कोई रचना हुई, या मेहदी लगाया तो अलंकार कई ढगके होते हैं। कैसा कौनसा अलकार कब ठीक है उसका वर्णन है तथा छद शास्त्रके साथ साथ उनका अलकार चलता है। जैसे कभी कभी किसीकी प्रशसा निन्दाके शब्दोमे भी चलते हैं। सुननेमे ऐसा आता है कि जैसे मानो निन्दा की जा रही हो मगर हो रही प्रशसा। कही, उपमा

के रूपमे भी अलंकार है, जैसे कह दिया कि इसका मुख चद्रमाकी तरह है। कुछ भी बात पायी जाती है, पर यह बतानेके लिए कि इसके मुखमे शोभा है और कुछ कांति भी है इसलिए चद्रमाकी उपमा अलकार हुआ, इस प्रकार अनेक अलकारोका वर्णन इस क्रिया विशाल पूर्वमे है।

(५४) क्रियाविशालपूर्वमें चौंसठ कलाओ तथा चौरासी गर्भादिक्रियावोंका वर्णन— क्रियाविशाल पूर्वमे ६४ कलाओका वर्णन है। इन ६४ कलाओमे सब विद्यायें आ गईं। धन कमाना, रसोई बनाना, व्याख्यान देना, पढाना, पढना आदिक सब बातोकी कलायें आ जाती है। तो उन ६४ कलावोका अलग-अलग वर्णन विस्तार रूपसे इस पूर्वमे किया गया है। कल्याणवाद क्रियाविशाल पूर्वमे गर्भाधान आदिक ८४ क्रियावोका वर्णन है। गर्भ होना, जन्म होना, कैसे बच्चोका पालना पोषना यह सब वर्णन क्रियाविशाल पूर्वमे है। देखिये— यह आगम श्रुतज्ञान है मगर जो बात जैन आगममे न मिले वह बात दुनियामे कही नही है। खोटी बात अच्छी बात जो भी बात दुनियाके अन्दर है सबका वर्णन द्वादशाङ्गमे मिलता है। वहाँ एक समझनेकी बात है और निराकरण भी तो आगममे किया गया है, पापका अगर वर्णन है तो वह पाप करनेके लिए वर्णन नही, किन्तु त्यागनेके लिए वर्णन है। वर्णन सब प्रकारका मिलेगा। कौन पालनेके योग्य है, कौन त्यागनेके योग्य है ? तो जितनी व्यावहारिक बातें हैं। कैसे अच्छा जीवन रहे, कैसे पालन-पोषण हो, इन सब बातोका वर्णन इस क्रिया-विशाल पूर्वमे है।

(५५) क्रियाविशाल पूर्वमें एक सौ आठ सम्यग्दर्शनादि क्रियाओं तथा देववंदनादिक २५ क्रियावोका वर्णन—सम्यग्दर्शन आदिक १०८ क्रियावोका भी वर्णन इस क्रियाविशाल पूर्वमे है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्आचरण कैसे अध्ययन करना, कैसे श्रद्धान करना आदिक सब वर्णन इस पूर्वमे है। देववदन आदिक २५ क्रियावोका भी वर्णन है। देववदन— कैसे नमस्कार करना, कैसे स्तवन करना, कैसे भगवानसे आवेदन करना और गुरु आदिकको कैसे सेवा विनय करना आदिक सभी क्रियावोका वर्णन इस पूर्वमे है। पर जो श्रावकके लिए या मुनिजनोके लिए रोजके करनेके काम हैं या नैमित्तिक काम हैं, कोई विशेष पर्व आया— अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टान्हिका, दशलक्षण आदि तो उनमे कौनसी क्रिया करनी चाहिए, ऐसी सब क्रियावोका वर्णन इस क्रियाविशाल पूर्वमे है। इस पूर्वके पद ९ करोड हैं।

(५६) त्रिलोकबिन्दुसार पूर्वमे लोकस्वरूपका वर्णन—१४वाँ पूर्व त्रिलोकबिन्दुसार है। इस पूर्वमे तीनो लोकका स्वरूप बताया है। जिसे एक सक्षेप रूपसे जानते है कि यह लोक पुरुषाकार है। सो पुरुष खडा करनेसे लोकका आकार नही बनता, किन्तु ७ पुरुषोको

एकके बाद एक खडा किया जाय और फिर वे सभी पुरुष अपने अपने पैर फैलाकर कमरपर हाथ रखकर खडे हो तो लोकके आकारका चित्रण हो जाता है। लोक सामनेसे नीचेसे ७ राजू है और घटते-घटते बीचमे एक राजू है और ऊपरके आधेमे वढते-बढते ५ राजू है, फिर घटकर एक राजू है। अगर पीछेकी ओर देखा जाय तो सब जगह सात-सात राजू है। जैसे कि ७ बालक खडे है तो पीछे सब जगह सात-सात हैं सिर्फ यही सामने एक ओर इतना विभिन्न है—उसमे मध्यलोकके नीचे ७ पृथ्वियोकी रचना है, जिसमे पहली पृथ्वीमे अन्दर-अन्दर ऊपर के दो खण्डोमे भवनवासी और व्यन्तरोके बहुत रत्नोके महल हैं, जिसमे चैत्यालय भी है उसके नीचेके खडमे पहला नरक फिर नीचे ६ पृथ्वियोमे दूसरे तीसरे आदिक ७ नरक तक हैं। इस मध्यलोकमे असख्याते द्वीप समुद्रकी रचना है और उससे अतिरिक्त बहुत फैला हुआ है और ऊपर स्वर्गोंकी रचना फिर अहिमिन्द्र, फिर सिद्धशिला उसके ऊपर लोकके अतमे सिद्ध भगवान विराजे हैं। इस लोकसम्बधी सब विवरण इस पूर्वमे है। कितनी जगह है, यह जीव कहाँ कहाँ अनंत बार पैदा हुआ है। सभी जगह पैदा हुआ है। कहासे मरकर कहाँ जाता है और किस तरह जाता है, यो सभी तरहकी रचनाओका विवरण इस त्रिलोक विन्दुसारमे है।

(५७) त्रिलोकबिन्दुसार पूर्वमे बीजगणित, मोक्षस्वरूप व मोक्षहेतुभूत दृष्टि व क्रियावोका वर्णन तथा बारहवें पूर्वकी पदगणना व समस्त पूर्वोंकी पदगणनाका सनिर्देश—त्रिलोकविन्दुसार पूर्वमे बीजगणितका भी स्वरूप बताया गया है। ऐसा गणित जो बीजरूप है, जैसे कि पहले हिसाबके गुर हुआ करते थे, ऐसे ऊँचे ऊँचे गणितके इसमे बीज दिए गए हैं। मोक्षका स्वरूप, मोक्षके कारणभूत क्रियावोका स्वरूप इस १४वें पूर्वमे है। मोक्ष मायने क्या ? छुटकारा। किससे छुटकारा ? कर्मोंसे छुटकारा, देहसे छुटकारा। जीव एक परमार्थ सत् है, वास्तविक पदार्थ है इसके साथ कर्म और शरीरका जो बधन लगा है उससे यह ससार मे रुलता है, कर्म और ससारका बधन छूट गया तो क्या जीव अकेला रह गया ? अकेला रह जाने कोमोक्ष कहते हैं, इतना अकेला रह गया कि उसके साथ देह भी नही, कर्म भी नही, और जब कर्म नही है तो कर्मका निमित्त पाकर जो विकार हुआ करते हैं वे विकार भी कहाँ से हैं ? तो द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, इन तीनो प्रकारके कर्मोंसे रहित जो अवस्था है उसे मोक्ष बोलते हैं। द्रव्यकर्म मायने ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्म, भावकर्म मायने जीवमे विकार मोह रागद्वेष सुख दु ख विकल्प विचार ये सब भावकर्म हैं। नोकर्म मायने शरीर, इन सबसे छूट गया, केवल अकेला रह गया। तो केवल अकेला रह जानेका नाम मोक्ष है, पर ऐसा मोक्ष पानेका मूल उपाय, सही उपाय इस समय भी ऐसा ही अकेला स्वरूप है उस स्वरूपको देखें, जो अपनेको यहाँ अकेला देख सकेगा वह अकेला बन जायगा और यहाँ दूसरोमे मिला

हुआ देखेगा तो वह मिला हुआ ही रहेगा। इस कारण उपाधिरहित, विकाररहित अपनी ही सत्तासे स्वय सिद्ध मात्र चैतन्यस्वरूपमे यह मैं हू, ऐसा अनुभव करना। तो जो यहाँ भी एकत्वस्वरूपको देखता है वह अकेला हो जाता है याने मुक्त हो जाता है। समयसारमे इसी एकत्वका वर्णन है जिस एकत्वकी दृष्टि पाये बिना इस जीवकी मुक्ति नही हो सकती। तो इस त्रिलोक बिन्दुसारमे मोक्षका और मोक्षके कारणोका वर्णन है। मोक्षकी साधना करने वाले मुनि जन, भव्यजन जीवनमे किस-किस ढंगसे रहे, क्या-क्या साधना बनायें कि उनको रत्नत्रयमे बाधा न आये, रत्नत्रयकी पूर्णता बने, ऐसी साधनाका भी वर्णन है। इस पूर्वके १२ करोड़ ५० लाख पद हैं, ऐसे इस १२वें अगका जो पूर्वगत नामका चौथा अधिकार है उस सबके मूल १४ पूर्वोंका, पदोका जोड़ ६५ करोड़ ५० लाख है।

(५८) **द्वादशाङ्गमे वर्णित विषय व पदगणनाके बोधका प्रभाव**—यहाँ ११ अग १४ पूर्व आदिका वर्णन चल रहा। पूजामे तो सब लोग पढ़ लेते है द्वादशाग, १२ अग, जिनकी धुन है ओकार रूप। यह आगम शास्त्र १२ अगोमे है, वे बारह अग क्या क्या कहलाते ? पढ तो गए थे १२ अग, पर उनका पता नही है। वे १२ अङ्ग ये है कि जिनमे सर्व प्रकारका वर्णन चल रहा। किसी भी एक बातको समझनेके लिए अनेक बातोका परिचय करना होता है। कोई यह सोचे कि मुझे तो सिर्फ जीवका सहजस्वरूप समझना है, हमे अन्य किसीका ज्ञान करनेसे मतलब नही, तो ऐसेमे जीवका स्वरूप समझमे न आयगा। स्वरूप समझनेके लिए बहुत विशाल ज्ञान करना होता है तब उसमे से सारभूत तत्त्वका सही परिचय बनता है। तो ये १२ अङ्ग क्या हैं, इनमे क्या वर्णन है, जब यह जानते हैं तो ज्ञानकी महिमा अपनेको विदित होती है, ऐसा ऐसा विशाल ज्ञान है, और वह ज्ञान कोई अलग बात नही है। मेरा ही जो ज्ञानस्वरूप है उस ज्ञानस्वरूपका ही विकास है। अपना माहात्म्य ज्ञात होता है नाना प्रकारके ज्ञानोसे। इस ही ज्ञानमे यह महिमा है और ये सब कुछ महिमा नही। इसका ज्ञान विशुद्ध होवे तो केवलज्ञान होता है। जिसमे तीनो लोकका, तीनो कालके सब पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान होता है और वह भी क्रमसे नही, किन्तु एक साथ ज्ञान होता है। तो वह द्वादशागोमे दृष्टिवाद अङ्ग नामके १२वें अङ्गका चार अधिकारोका वर्णन हुआ।

(५९) **बारहवें अंगके अन्तिम विभाग चूलिकाके प्रथम भेद जलगता चूलिकाके विषय व पदगणनाका निर्देश**—अब दृष्टिवादका ५ वा अधिकार है चूलिका। चूलिकाके ५ भेद है—(१) जलगता, (२) स्थलगता, (३) मायागता, (४) रूपगता, (५) आकाशगता। इस जलगता चूलिकामे जलमे कैसे प्रवेश करना, जलमे कैसे तैरना, कैसे डूबना, जलको कैसे रोकना, जलका बाँध कैसे बाँधना, यह सब वर्णन है। सुननेमे ऐसा लग रहा होगा कि जैन

शासनमें इसके वर्णनकी क्या आवश्यकता थी ? तो भाई जब द्वादशाङ्ग शास्त्र है। श्रुतज्ञान है तो श्रुतज्ञानके द्वारा जो जो बात जानी जा सकती है वह सब वर्णन आता है। वैज्ञानिक प्रयोग ये सब द्वादशांगके अन्दर आये और हमने सुना है ऐसा कि बहुत पहले समयमे हिन्दुस्तानसे प्राचीन जैन शास्त्र गए है जिनमे अनेक क्रियावोका वर्णन था और उससे उनको विज्ञानके विकासमे मदद मिली है। तो जलगता चूलिकामें जलका स्तम्भन करना, जलमे गमन करना, अग्निमे प्रवेश करना, अग्नि जल रही है इसमेसे निकल रहे हैं। कितनी ही औषधियाँ तो यहाँ भी हैं कि हाथमे लगा लो तो गरम-गरम लोहेकी जंजीरोको भी छूने पर उसका कुछ असर हाथमे नही होता। तमाशा दिखाने वाले लोग अवसर करके दशहराके दिनोमे इस प्रकारके दृश्य अनेको जगह दिखाया करते हैं। साँकलको हाथसे छू रहे हैं और उसपर हाथ चला रहे हैं, पर हाथ नही चलता। हाथपर कोई औषधि ऐसी लगा लेते है कि हाथ नही जलता। तो जल और अग्नि संबंधी सब कलाओका वर्णन इस जलगता चूलिकामे है ? अग्निका भक्षण कर लें और मत्र तत्र आदिकके द्वारा भी इन सब कार्योंको कर लें, यह सब वर्णन इस पहली चूलिकामे है। इसके पद हैं—दो करोड, ६ लाख, ८६ हजार २००।

(६०) स्थलगता व रूपगता चूलिकाके विषय व पदगणनाका निर्देश—दूसरी चूलिका है स्थलगता—जमीन पर चलना। चल रहे हैं जमीन पर और आडे पर्वत आ गया तो उस पर्वतके भीतरसे भी निकल जाय, यह भी एक कला है। और इसका वर्णन इस चूलिकामे किया गया है। ऋद्धिसे बने, मत्रसे बने, इन सब कलाओका वर्णन स्थलगतामे है। पहाडके दूसरी तरफ जाना हो तो कहो १०–१२ मील घूम कर जाय और सीधा कोई एक मील हो है, पर प्रवेश तो नही कर सकता कोई। तो स्थलगता चूलिकामे पर्वत आदिकमे प्रवेश करनेकी क्रियावोका वर्णन है। ये क्रियायें बनी हैं मंत्र तत्र तपश्चरणके द्वारा। तो इन मत्र तत्र तपश्चरणका वर्णन इस स्थलगता चूलिकामे है। इसके भी पद २ करोड, ६ लाख, ८६ हजार २०० हैं। सभी चूलिकाओके पद एक समान हैं। तीसरी चूलिका है मायागता—इसमे मायामयी इन्द्रजाल और विक्रिया कैसे कर सके, ऐके मंत्र तत्र तपश्चरणका वर्णन है। छोटे शरीरको बडा बना ले, बडेको छोटा बना ले, छोटेको वजनदार बना ले, ये सब कलायें है। देखिये—जब प्रद्युम्न कुमार (श्रीकृष्णके लडके) हरे गए थे और दूसरी जगह जाकर अनेक प्रकारकी कलायें सीखी। और बहुत बडी अवस्था होनेपर उन्हें अपने माता-पिता से मिलनेका विचार हुआ तो वे आये तो यो ही सीधे मिलने नही आये। बडे पुरुषोमे कोई कलाकी बात, अद्भुत बात देखनेको मिला करती है। वे ऐसे नहीं आये कि चलो पत्र डाल दिया कि हम हरे गए थे, यहाँ अच्छी तरहसे रह रहे हैं, हम अमुक दिन आ रहे हैं यो

बात नही होती । वे अपने आनेका भी समय नही बताते, किन्तु उनकी करामातसे ही लोग जान जाते कि आ रहे है । तो प्रद्युम्न कुमार अपनी किसी कलाके बलसे पहुचे उस नगरीमे, और वहाँ पहुचकर जो राजदरबारका बहुत बडा फाटक था उसके आगे पड गए । लोगोके आने जानेका रास्ता रुक गया । वहाँ बहुतसे लोगोने उन्हे उठानेकी बहुत कोशिश की, पर वे किसीके हिलाये न हिले । ऐसी ही और भी अनेक अद्भुत बातें दिखायी, उसके बाद अपना रूप प्रकट किया, और किसी अवधिज्ञानी मुनिने बता भी दिया था कि जिस दिन ऐसा अतिशय होगा, ऐसा चमत्कार देखनेको मिलेगा उस दिन समझना कि प्रद्युम्न कुमार आ गया । तो ऐसी अनेक मायामयी विद्याओंका वर्णन इस मायागत चूलिकामे है । इसके भी पद २ करोड ६ लाख ८९ हजार २०० हैं ।

(६१) **रूपगता कुलिकाके विषय व पदगणनाका निर्देश**—चौथी है रूपगता चूलिका, इसमें रूप विक्रियाका वर्णन है । पुरुष अपना रूप पलट दे, हाथी, घोडा, बैल आदिक अनेक प्रकारके रूप पलट लेवे, उसकी साधनाका वर्णन है उन मन्त्र तंत्र तपश्चरणका । एक ब्रह्मगुलाल मुनि हुए है । उनके सबधमे बताया जाता है कि वे रूपके बदलनेमे याने बहुरूपियाका काम करनेमे बहुत कुशल थे । उनकी इस कलाको देखकर मन्त्री लोग जलने लगे थे । तो उन मन्त्रियोने एक ऐसा उपाय रचा कि राजाके द्वारा इस बहुरूपियाको प्राणदण्ड दिलवा दिया जाय । तो राजाके पास मत्री लोग जाकर बोले राजन् ! इस बहुरूपियासे कहो कि इस बार सिंहका रूप धरकर आये । तो उस रूपमे वही तो दिखाना चाहिए जिसका रूप है ?—जब वह सिह गरजता हुआ आया तो राजाके लडकेने उससे मजाक कर दिया—वह देखो कुत्ता आ गया । वहाँ ब्रह्मगुलालने चूंकि अपने भाव सिंहके जैसे बना रखा था, तो राजकुमारके मुखसे अपमान भारी बात सुनकर क्रोधित हो उठा और अपने पजोसे राजकुमारका पेट फाड़कर उसकी हत्या कर दिया । अब राजा भी उसका क्या कर सके, आखिर सिंहका रूप रखनेका आदेश दे चुका था खैर इस घटनाके बाद मन्त्रियोन राजाको सलाह दिया कि इस बार आप उस बहुरूपियाको मुनि बनकर आनेका आदेश दें । राजाने वैसा ही किया । जब ब्रह्मगुलालको मुनि बनकर आनेका आदेश मिला राजासे तो ब्रह्मगुलाल बोले—महाराज, मुनिका रूप रखनके लिए हमे दो तीन महीनेका समय दीजिए । तो राजाने कहा—ठीक है, दो तीन माहका समय दिया जाता है आखिर ब्रह्मगुलालने दो तीन माह तक एकान्तमे रहकर धर्मकी साधना करके पूरा अभ्यास करके मुनिका रूप रख लिया और राज दरबारमे पहुचे । उस समय ब्रह्मगुलाल मुनिका रूप दर्शनीय था, आखिर सही मुनि बनकर आये थे । वहाँ राजाने, मन्त्रियोने तथा सभीने देखा और सभी धन्य-धन्य कह उठे, पर ब्रह्मगुलाल मुनि बिना

ही किसीसे बोले विरक्त होकर जगलके लिए चल पडे । सभीने बहुत समझाया—अरे विरक्त होकर जंगल मत जावो, आखिर वह रूप ही तो था, चलो अपने घर चलो…। तो वहाँ ब्रह्म-गुलाल मुनि बोले—भाई मुनिका रूप ऐसा नही हुआ करता कि उसे ग्रहण करके फिर छोड़े । तो इसमे अनेक रूपोका, चित्रामका, काष्ठलेपका, धातु रसायनका निरूपण है । इसमे भी २ करोड ६ लाख ८६ हजार २०० पद हैं ।

(६२) आकाशगता चूलिकाके विषय व पदगणनाका निर्देश—सूत्रपाहुड ग्रन्थमें आगम क्या है, कितना है, उसमे क्या-क्या विषय है यह वर्णन चल रहा है । तो समस्त आगम द्वादशाग और अग बाह्य इन दो मे विभक्त है । विभक्त यो हो गया कि जितने समस्त आगममे पद हैं, अक्षर है उन अक्षरोमे मध्यम पद विभक्त किये गये तो पद पूरे जितने हुए वे तो आ गए द्वादशांगमे और उनसे जो अक्षर बचे जिनका एक पद पूरा न हो सका वह आया है अंग बाह्यमे । तो अग बाह्यका जब वर्णन होगा और उनका विषय बताया जायगा तो यह विदित होगा कि इतना अधिक विषय है समस्त अग बाह्यमे और फिर भी मिलकर एक पद नही है, उससे पदके प्रमाणका अनुमान होगा । तो प्रकरणमें चूलिकाका वर्णन चल रहा, जिसमे जलगता, स्थलगता, मायागता और रूपगता, इन चार चूलिकाओका वर्णन हो चुका । अब ५वो चूलिका है आकाशगता । आकाशमे कैसे गमन किया जाता, गमन करनेकी सिद्धि कैसे हो, उसके कारणभूत मत्र यत्र तत्र आदिकका वर्णन है । मंत्र कहलाता है अक्षर वाला जाप, यंत्र होता है उसका कोई आकार बनाना और आकारमे अक्षर विन्यास करना और तत्र कहलाता है कोई टोटका या चेटक आदिक । जैसे कोई पुरुष बीमार है और कोई मत्र यंत्र तत्रकी भी औषधि करे तो मत्र बुलवाना मायने कोई मत्र बोलता है, झाडता है, ऐसा रिवाज अब भी है । यत्र कहलाया कोई कागज, भोजपत्र वगैरहमे रखकर उसे धागेसे बांध देना और तंत्र कहलाया उसका कोई टोटका करना । जैसे रात्रिको सडकपर दीपक या कोई चीज रख दे, (यह लोग बतला रहे हैं) पर यहां तो आकाशगमन कर सके उसकी सिद्धिके लिए यंत्र मत्र तत्र बताये गए है । इसमे भी २ करोड ६ लाख, ८६ हजार २०० पद है । इस प्रकार १२वां अंग पूर्ण हुआ ।

(६३) द्वादशाङ्गमे से निकले हुए आजके उपलब्ध आगमका परिमाण—इस १२ वें अगके बीच यह बात जानना कि जो १२वें अगमे पूर्व बताये गये उत्पाद पूर्व आदिक जिनमे सबसे अधिक पद हैं उन पूर्वोमे प्रत्येकमे १०-१० वस्तु हैं । याने महाधिकार, और उन वस्तुवोमे प्रत्येक वस्तुमे २०-२० प्राभृत हैं, जिनमे दूसरे पूर्वमे अग्रायणी पूर्वमे १४ भूमिकायें हैं उनके नाम हैं—पूर्वांत, अपरांत, ध्रौव्य, अध्रौव्य, धवल, लब्धि, अध्रुव, सम्प्र-

णिधि, भौम, सर्वार्थ, कल्पनीय आदिक उनमे से जो ५वी वस्तु है उसके २० प्राभृत है । तो उन प्राभृतोमे जो चौथा प्राभृत है उसके २४ अनुयोग द्वार है । उन २४ अनुयोग द्वारोमे षट्-खंडागमकी रचना हुई, जिसकी टीका धवल कहते हैं । वह तो है षट्खडागमकी टीका, मगर इतने बड़े विस्तार वाला जो आज साहित्य पाया जा रहा वह एक पूर्व की एक वस्तुमे से एक प्राभृतकी कुछ अनुयोग मात्र है, तब द्वादशांग समझो कितना बडा है, उसके अनुयोग कौन-कौनसे है ? कृति, वेदना, स्पर्शन, कर्मप्रकृति, बधन, निबधन, प्रक्रम, अनुपक्रम, अभ्युदय, मोक्ष, संक्रमण, लेश्या, लेश्या कर्मपरिणाम, साता असाता, दीर्घ, ह्रस्व, भवधारणा, पुरुपुद्-गल, निधत्ति, अनिधत्ति, सनिकाचित, अनिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिम स्कध, अल्पबहुत्व, इसीमे से कुछ वर्णन आजके करणानुयोग साहित्यमे पाया जाता है । तो इतना विशाल श्रुत-ज्ञान है ।

(६४) **श्रुतज्ञानकी विशाज्ञताका निर्देशन**—न्यायशास्त्रमे यह बताया है कि श्रुतज्ञान और केवल ज्ञान दोनो बराबरके ज्ञान है । केवलज्ञानसे कम श्रुत ज्ञान नही, पर फर्क यह हो गया कि केवल ज्ञान साक्षात् जानता है और श्रुत ज्ञान असाक्षात् जानता जैसे किसीने कोई तीर्थ क्षेत्र नही देखा मगर उस तीर्थ क्षेत्रकी पुस्तक मिल गई, उस पुस्तक को बाँचकर सब बातें उसने जान ली । इस स्टेशनसे उतरते हैं, इस तरफको सडक गई है, इतनी चौडी सडक है । इतनी दूर धर्मशाला है, वहाँ इतने कमरे है । मान लो उस तीर्थ क्षेत्रका फोटो भी बहुत स्पष्ट रूपसे दिया हुआ हो जिससे कि उस तीर्थ क्षेत्रका सब कुछ कोठियाँ, आफिस, मदिर आदि सब जान लिया, मूर्तियाँ भी जान ली । जिसमे खूब पूरा वर्णन हो ऐसी पुस्तकको पढ़कर तीर्थका हाल जान लिया और एक मनुष्य वहाँ ही जाकर प्रत्यक्ष रूपसे देख आवे तो जाननेमे वे दोनो बराबर हैं, पर एकने साक्षात् जाना और एकने पुस्तकसे जाना । तो स्याद्वाद और केवलज्ञान ये दोनो समस्त तत्त्वोको बताने वाले है, फर्क साक्षात्कार और असाक्षात्कारका है। जो तत्त्व इसमे न आया हो, समझो वह तत्त्व है ही नही, याने सब कुछ इसमे आ गया है । तो ऐसा विशाल श्रुत ज्ञान जो पदके रूपमे है वह १२ अगोमे है ।

(६५) **अङ्गबाह्यमें सामायिक प्रकीर्णकका विषय**—अब पदोसे बचे हुए जिनका कि एक पद नही बना उन अग बाह्योका वर्णन करते हैं । अग बाह्य श्रुतके १४ प्रकीर्णक हैं, जिनमे पहला प्रकीर्णक है सामायिक । सामायिकका वर्णन ६ प्रकारसे और कई प्रकारोसे है। सामायिक ६ प्रकारके होते हैं —(१) नामसामायिक (२) स्थापनासामायिक (३) द्रव्यसामा-यिक (४) क्षेत्रसामायिक (५) काल सामायिक और (६) भावसामायिक । नाम सामायिक नाममे शब्दमे रागद्वेष न लाना, अथवा यह सामायिक है इस तरहका नाम होना यह नाम

सामायिक है। शब्दोमे नाममे इसके समता रहती है। स्थापना सामायिक—यह सामायिक है, ऐसी स्थापना होना अथवा स्थापित जो वस्तुवें हैं, जिनमे स्थापना कर रखी है उनमे रागद्वेष न होना स्थापना सामायिक है। जैसे बहुतसे देवोकी स्थापना होती है—कुदेवकी, देवकी तो निर्णयकी बात और है, और जो छोटी पदवी है उसमे यह खोटा, यह अच्छा, ऐसा भाव भी होता है, पर कुछ रागद्वेष नही, समता परिणाम है, ऐसे भावको स्थापनासामायिक कहते है। इसमे कही यह नही है कि उन सबका एकसा विनय करनेका भाव हो, वह तो मिथ्यात्व है, मगर स्थापित वस्तुओमे उसे रागद्वेष नही जगता, इतना उसके शुद्ध ध्यान बन रहा है। द्रव्यसामायिक—सामायिक करेंगे उससे पहलेकी जो तैयारी है उसे भी द्रव्यसामायिक कहते हैं। द्रव्य जगतमे कितने है, उन सब द्रव्योके बारेमे रागद्वेष न होना यह द्रव्यसामायिक है। जिन पुरुषोको आदत किसी भी पुद्गलसे अधिक घृणा करनेकी है और किन्ही सुहावने, सुगधित पदार्थोंमे शौक करनेकी है नो कही अत्यन्त घृणा और कही अत्यन्त राग, इस प्रकारकी जिनकी प्रकृति है उनके समता परिणाम मुश्किल से आता है। थोडा हो वह कमजोरी है मगर उसका ज्ञाता ही रहे, यह वस्तु ऐसी ही गदी होती है। तो ऐसे द्रव्योमे समता परिणाम होना द्रव्यसामायिक है। क्षेत्रसामायिक—क्षेत्रका एक निश्चय बनाकर उतने ही क्षेत्रमे रहूगा, आगे न जाऊँगा, और कोईसा भी क्षेत्र हो, स्थान हो, साधारण असाधारण, उन सब क्षेत्रोमे समताभाव होना, वह क्षेत्र सामायिक है। प्रसिद्धि है कि अमुक पर्वतसे, अमुक क्षेत्रसे बहुत मुनि मोक्ष गए है इस कारण वह क्षेत्र पवित्र है, मगर यह भी तो सोचो कि जहाँ आप बैठे हैं यहाँसे भी अनन्ते मुनि मोक्ष गए या नही? ढाई द्वीपके अन्दर प्रत्येक स्थानसे अनन्त सिद्ध हुए। जहाँ आपकी रसोई बनती हो, गुसलखाना हो, बैठक हो, कोईसी भी जगह हो, सभी सिद्ध क्षेत्र हैं। मगर जो स्थान कुछ विशिष्ट है और आजकल भी ध्यान करनेके लायक है और जहाँ जाकर कुछ वातावरण विरक्तिका अधिक मिलता है वहाँसे मोक्ष अधिक गए हैं। और ऐसे स्थानमे अपने ध्यानकी भावना जगती है, इसलिए वे क्षेत्र अधिक प्रसिद्ध हुए। तो सभी प्रकारके भूमि स्थानोमे इसको रागद्वेष न हो वह क्षेत्रसामायिक है। कालसामायिक—समयपर सामायिक हो और अन्य समयो मे कालके प्रति समता, वर्षाऋतु, शीतऋतु, ग्रीष्मऋतु इन सब कालोमे जो सुहावना, असुहावना मानते हैं वह सामायिकके खिलाफ बात है, कोईसा भी समय हो सबमे समता परिणाम रहना, रागद्वेष न जगना। जब तेज गर्मी पडती है तो इस गर्मीके प्रति एक मनमे घृणा सी होती है कि यह गर्मी सबसे बुरी चीज है। ऐसा भाव कालसामायिक वालेके नही हुआ करता। जो है सो जान रहे है, वहाँ रागद्वेष नही। भावसामायिक—अनेक प्रकारके भाव

कर्मोदयसे जगते है, उन परभावोंका ज्ञाता द्रष्टा रहना, उनमें रागद्वेष न जगना, सुखके साधन मिलें, दु.खके साधन मिलें और उससे साता असाताका परिणाम जगे तो उनसे निराले अपने अविकार ज्ञानस्वरूपको ही देखना, उनमे सुहावना असुहावनाकी बात न आना, यह भाव-सामायिक है : तो इस प्रकार सामायिकके बारेमे विशेष वर्णन है इस प्रकीर्णकमे ।

(६६) अङ्गबाह्यमें चतुर्विंशतिस्तव व वन्दना नामक प्रकीर्णकका विषय—दूसरा प्रकीर्णक है चतुर्विंशतिस्तव, अर्थात् २४ तीर्थंकरोकी स्तुति करना, इसमे २४ तीर्थंकरोके नामसे यह प्रकीर्णक क्यो बना कि प्रत्येक चतुर्थ कालमे भरत और ऐरावत क्षेत्रमे २४-२४ तीर्थंकर होते हैं । अबसे पहले अनन्ते २४ तीर्थंकर हो चुके, क्योंकि चतुर्थ काल अनन्ते बीत चुके । और बीतेंगे, तो तीर्थंकर चूंकि मार्गदर्शक हैं इसलिए भक्तिमे उनका प्रधानतासे नाम होता है । उनकी भक्ति की जाती है । तो इसमे २४ तीर्थंकरोके गुण महिमा विधि आदिक का वर्णन है । तीसरा प्रकीर्णक है वंदना । वंदना और स्तवनमे कोई अधिक अन्तर नही है । स्तवन करे तो वहाँ भी वदना की जाती है । बदना करे तो वहाँ भी स्तुति की जाती है । स्तुतिमे गुणानुवादका अधिक प्रकरण होता है और बंदन समय समयपर होता । बंदना और नमस्कारकी मुख्यता है, पर भीतरमे यह भला है, कल्याणमय है, ऐसा भाव रहता है । अन्तर्जल्पसे स्तवन चलता है तो विषयमे अधिक फर्क नही, किन्तु २४ तीर्थंकरोको सम्मिलित स्तवन वदन तो स्तवन कहलाता है और एक-एकका नाम लेकर मैं इनकी बंदना करता हूं, अमुक तीर्थंकरकी बदना करता हू इस तरह अलग-अलग वदना करना इसे कहते हैं बंदना । किसी एक तीर्थंकरके आश्रय बंदना चल रही है ।

(६७) अङ्गबाह्यमें प्रतिक्रमण व वैनयिक प्रकीर्णकका विषय—चौथा प्रकीर्णक है प्रतिक्रमण । इसमे ७ प्रकारके प्रतिक्रमणोका वर्णन है । रात्रिमे कोई दोष लगा, उसका प्रतिक्रमण करे याने प्रायश्चित्त ले, शुद्धि करे, दिनमे दोष करे उसका प्रतिक्रमण करे, १५ दिनमे फिर प्रतिक्रमण करे, रोज-रोज प्रतिक्रमण करके भी प्रत्येक १५वें दिनमे सामूहिक प्रतिक्रमण करे पंद्रहों दिनका । फिर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण, चार-चार माहका प्रतिक्रमण, फिर वार्षिक प्रतिक्रमण, वर्षायोग प्रतिक्रमण । चातुर्मासमे बैठे उठे वह प्रतिक्रमण, उत्तमार्थ प्रतिक्रमण । जब अन्तिम समय हो, मरणकाल हो तो सारी जिन्दगीके दोषोकी शुद्धि पुनः करे । और वह प्रतिक्रमण किस विधिसे किया जाय, उन विधियोका वर्णन इसमे है । ५वाँ प्रकीर्णक है वैनयिक—इसमे ५ प्रकारके विनयोका वर्णन है । सम्यग्दृष्टिका विनय, सम्यग्ज्ञानीका विनय, सम्यक्चारित्रवानका विनय, तपस्वियोका विनय और उपचार विनय, इन गुणोका भी विनय । तो गुणोके प्रति अपना झुकाव होना यह विनयमे उद्देश्य होता है, तो इस विनयका वर्णन इस प्रकीर्णकमे है ।

(६८) **अङ्गबाह्यमे कृतिकर्म, दशवैकालिक व उत्तराध्ययन प्रकीर्णकका विषय**—छठा प्रकीर्णक है कृतिकर्म। इसमे कर्तव्यका वर्णन है, बंदना करना, प्रतिक्रमण करना, अरहंत आदिककी भक्ति करना, स्वाध्याय करना आदिक जो जो भी क्रियायें हैं उन क्रियावोका वर्णन कृतिकर्ममे है। अष्टान्हिकामे कौनसी भक्ति करें, स्वाध्यायके समय कौनसी भक्ति करें, दीक्षाके समय कौनसी भक्ति की जाय, ऐसे प्रत्येक अवसरपर कब कौनसी भक्ति क्रिया की जाती है, उसका वर्णन है। ७वां प्रकीर्णक है दशवैकालिक। इसमे मुनियोका आचरण, आहार शुद्धि, किस तरहसे आहार होना, यह सब वर्णन है। ८वां प्रकीर्णक है उत्तराध्ययन। इसमे परीषह उपसर्ग सहनेका विधान बताया गया है। वे भाव भी दर्शाये गए है कि परीषह उपसर्ग आयें तो किस तरहकी भावना अन्दरमे करें कि उस उपद्रवमे उसके प्रति रागद्वेष न जगें। तो परीषह और उपसर्गोके सहनेका विधान इस ८वें प्रकीर्णकमे है।

(६९) **अङ्गबाह्यमे कल्पव्यवहार, कल्प्याकल्प्यव्यवहार व महाकल्प प्रकीर्णकका विषय**—९ वां प्रकीर्णक है कल्पव्यवहार। इसमे यह बताया गया है कि मुनियोको कौन सा काम करना योग्य है और कौन सा अयोग्य है। योग्य आचरण करनेका और अयोग्य आचरण के त्यागका इसमे विशेष वर्णन है। और कदाचित् अयोग्य पदार्थका सेवन हो जाय, अयोग्य काम बन जाय तो उसका प्रायश्चित्त बताया है कि किस तरह शुद्ध हो सकेगा। कोई पुरुष किसी व्रत नियमसे चिग जाय तो उसका यह परिणाम नही कि उसका पतन ही हो गया। प्रायश्चित्तसे शुद्धि हो सकती है। पर जिसको रोज रोज ही दोष लगानेकी आदत है उसपर प्रायश्चित्तका असर ही नही होता, इसलिए वह अनाचार कहलाता है। १० वां प्रकीर्णक है कल्पाकल्प। इसमे वस्तुके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा योग्य अयोग्यका वर्णन है। कौन सा द्रव्य योग्य है कौन अयोग्य है, कौन सा क्षेत्र रहनेके योग्य है अथवा अयोग्य है आदिक वर्णन इस प्रकीर्णकमे है। ११ वां प्रकीर्णक है महाकल्प। जो मुनि हैं, जिनकल्पी हैं, एकाकी विहारी हैं उन मुनियोका प्रतिमयोग, रात्रिभर निश्चल खडे रहना, वर्षायोग, शीतकायोग अनेक प्रकारके योगोका प्ररूपण है। और, जो स्थविरकल्पी मुनियोकी प्रवृत्ति है उसका वर्णन है। मुनि दो प्रकारके होते हैं—जिनकल्पी और स्थविरकल्पी। जिनकल्पी वे कहलाते जिनका बहुत ऊँचा सहनन है, बडे ऊँचे ज्ञानी है, जिनका बडा ऊँचा अभ्यास है। जिनके बारे मे डिगनेकी कोई सम्भावना नही है। वे अकेले रहते है और निरन्तर आत्मध्यानमे रहते हैं वे जिनकल्पी मुनि कहलाते हैं। उनका विधान प्रतिमायोग त्रिकालयोग आदिक है। याने ऊँचा तपश्चरण। और स्थविर कल्पी मुनि वे कहलाते हैं जो अकेले विहार नही करते, सगमे रहते हैं और आचार्यके आदेशानुसार सब प्रवृत्तिया करते है। दोष लगे तो प्रायश्चित देते हैं

वे स्थविर कल्प है। तो इस प्रकीर्णकमे जिनकल्पीको क्या करना चाहिए, स्थविरकल्पीको क्या करना चाहिए, यह सब वर्णन है।

(७०) अङ्गबाह्यमें पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका प्रकीर्णकका विषय—१२ वां प्रकीर्णक है पुंडरीक। इसमे यह वर्णन है कि वे कौनसे कारण हैं, कौनसे परिणाम हैं जिनसे यह जीव चार प्रकारके देवोमे उत्पन्न होता है। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। इनमे उत्पन्न होनेके योग्य क्रिया व साधनाका वर्णन है। १३ वां प्रकीर्णक है महापुण्डरीक इसमे यह बताया गया है कि जो बडी ऋद्धिके धारकदेव हैं, इन्द्र हैं उनमें उत्पन्न होनेके क्या परिणाम हैं, क्या कारण है, क्या साधन है, कैसी प्रवृत्ति हो, कैसा व्रत नियम हो, जिसके फलमे उत्कृष्ट देव होता है। १४ वां प्रकीर्णक है निषिद्धिका इस प्रकीर्णक मे अनेक प्रायश्चित्तोका वर्णन है, निषेधका याने त्यागका। दोषोकी कैसे शुद्धि हो, उन सब उपायोका वर्णन है। यह पूरा प्रायश्चित शास्त्र है। तो इस तरह ये १४ प्रकीर्णक है जो अंग बाह्य कहलाते हैं समस्त अग बाह्यमे ८०१०८१७५ अक्षर है। जो अग बाह्य कहलाते है।

(७१) श्रुतज्ञानकी अनेक श्रेणियां—द्वादशांग व अ गबाह्य श्रुतज्ञानका सम्पूर्ण रूप है। अगर किमीमे थोडा भी श्रुतज्ञान हो, अत्यन्त कम श्रुतज्ञान होता तो उनकी श्रेणियाँ बनायी गई है कि सबसे छोटा श्रुतज्ञान पर्याय श्रुतज्ञान कहलाता, जो कि अक्षरका अनन्तवाँ भाग श्रुतज्ञान है। एकेन्द्रिय आदिकके भी श्रुतज्ञान होते हैं और श्रुनकेवलीके भी श्रुतज्ञान होते हैं, पर उनमे तो बडा अन्तर है। तो श्रुतज्ञानकी सबसे जघन्य श्रेणी पर्याय वाला श्रुत-ज्ञान कहलाता है। उससे अधिक अक्षरज्ञान, उससे अधिक पद, फिर संघात, फिर प्रतिपत्ति, अनुयोग, प्राकृत, प्राभृत, वस्तु, पूर्व ऐसे ये बढते जाते है और चल करके यह पूर्ण श्रुतज्ञान, यह द्वादशाग और अ गबाह्य ये सब मिलकर इतने विशाल होते है। श्रुतज्ञान दो प्रकारका है—(१) अक्षरात्मक, (२) अनक्षरात्मक। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चे-न्द्रिय तक होता है, किन्तु इससे लोकव्यवहार व उपदेशादिकी प्रवृत्ति नही होती है। अनक्ष-रात्मक श्रुतज्ञानके असख्यात भेद है। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानमे अपुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सख्यात भेद है जो कि एक ही प्रमाण हैं याने सख्या— १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ है। अ गप्रविष्ट याने द्वादशागमे तथा अ गबाह्यमे सब अपुनरुक्त अक्षर एक ही प्रमाण हैं। पुनरुक्त अक्षरोकी सख्याका कोई नियम नही कितने ही हो जावें। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानमे सबसे कम क्षयोपशम वाला श्रुतज्ञान पर्यायज्ञान है यह सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके होता है। यह इतना छोटा ज्ञान है इसके आवरण पर्यायावरण प्रकृतिका इसपर प्रभाव नही होता, किन्तु त्वरित आगेके श्रुतज्ञानमे याने पर्यायसमास ज्ञानमे पर्यायावरणका प्रभाव है। यदि

पर्यायज्ञान भी न रहे तो जीव ज्ञानरहित हो जायगा सो होता नही। पर्यायज्ञानसे अनन्तगुणा पर्यायसमास ज्ञान है, इससे अनतगुणा अक्षरवान है; इससे अनन्तगुणा अक्षरसमास ज्ञान है, इससे कई गुणा पदज्ञान है। इससे कई गुणा पदसमास ज्ञान है, इससे अधिक सघातज्ञान है, इससे अधिक सघातसमास ज्ञान है। इससे अधिक प्रतिपत्तिक ज्ञान है, इससे अधिक प्रतिपत्तिकसमास ज्ञान है, इससे अधिक अनुयोग ज्ञान है, इससे अधिक अनुयोगसमास ज्ञान है। इससे अधिक प्राकृतप्राकृत ज्ञान है, इससे अधिक प्राकृतप्राकृतसमास ज्ञान है। इससे अधिक प्राभृत ज्ञान है, इससे अधिक प्राभृतसमास ज्ञान है। इससे अधिक वस्तु श्रुतज्ञान है, इससे अधिक वस्तुसमास ज्ञान है। इससे अधिक पूर्व श्रुतज्ञान है, इससे अधिक पूर्वसमास श्रुतज्ञान है। इस प्रकार वृद्धि होते-होते समस्त आगमका श्रुतज्ञान होता है।

सुत्तम्मि जाणमाणो भवस्स भवणासरण च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ॥ ३ ॥

(७२) आगम वचन मननसे भवोत्पादका विनाश—जो पुरुष सूत्रके विषयमे जाननहार है याने आगमका ज्ञाता है वह पुरुष अपने ससारकी उत्पत्तिका नाश करता है। जैसे कि सूई अगर सूत्र रहित है, सूत्र कहते हैं डोराको तो सूई गिर जायगी, नष्ट हो जायगी, मिलेगी नही, और सूई अगर सूतमे लगी हुई है तो वह गिरती नही है, ऐसे ही जो मनुष्य सूत्रमे लगा हुआ है वह नष्ट नही होता। वह हमेशा अपने को अपनेमे देखता रहता है और जिस मनुष्यको सूत्रका ज्ञान नही, सूत्रमे पिरोया हुआ मनुष्य नही वह मनुष्य नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जो आगमका जाननहार है वह तो ससारसे पार हो जाता है और जो आगमको नही जानता वह ससारमे रुलता रहता है। सूत्र कहते हैं उस वाक्य प्रबंधको जिसके द्वारा जीव अपने यथार्थ तत्त्वको ढूंढ सके। यदि यह आगम न होता तो आत्माका अपनेको कैसे पता पडता ? आत्मा है खुद ही, मगर आगमके बोध बिना तो आत्माका पता नही पड सकता। बचपनमे सीखा, बादसे सीखा और अनुभव होनेपर जाना तो वह सब आगमकी देन है। जगतके जीवोपर तीर्थंकर अरहंत भगवानका कितना बडा उपकार है। सत्य उपकार की जिसकी वाणीमे परम्परासे आये हुए आगमको जानकर यह जीव अनन्त दुःख मेट लेता है। अज्ञानमे अनन्त दुःख है, केवलज्ञान होनेपर अनन्त सुख है। तो अज्ञान रहने पर अनन्त दुःख है, कुछ लेन नही, देन नही, सारे पदार्थ निराले हैं, किसीका किसी से संबंध नही। सब अपनी-अपनी सत्ता लिए हुए है। एक यह मिथ्याबुद्धि बना लिया कि ये मेरे कुछ हैं, जहाँ सबध माना किसी भी चेतन और अचेतन पदार्थसे, बस वैसे ही इसको आकुलता होने लगती है। जिसको आकुलता न चाहिए। जन्म-मरणसे मुक्ति चाहिए उसका

सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि अपने सहज अविकार स्वरूपकी पहिचान करे।

(७३) अपने सहज स्वरूपका अनुभव होनेपर आत्मशौर्यका अनुभव—जैसे कोई तुरन्तका जाया हुआ शेरका बच्चा गडरियाके द्वारा पकडा गया, उसका पालन पोषण भेड़ बकरियोके बीचमे हुआ। तो वह शेरका बच्चा अपनेको भी उन भेड बकरियो जैसा ही समझता रहा, जो चाहे जैसे चाहे उसके कान मरोड दे, उसे पीट दे। वह बेचारा बहुत दिनो तक अपनेको बडा दु:खी अनुभव करता रहा। एक दिन कही जगलमे उसे अपनी ही जातिका शेर दिख गया, उसकी दहाडको सुनकर उसे बोध हो गया कि अरे मैं तो इस शेरकी जाति का हूँ, मैं तो शेर हूँ। भेड़ बकरी नही, बस उसमे शूरता प्रकट हो गई और दहाड देकर, छलांग मारकर वहांसे निकल गया। उसे अब रोकने वाला कौन? ऐसे ही जब तक इस जीवको ऐसा मिथ्या श्रद्धान रहता है कि मै तो ससारका एक प्राणी हूँ। मै तो ऐसा ही साधारणसा मनुष्य हू, मुझे तो ऐसा ही करना चाहिए। मैं ऐसा ही इनका सम्बन्धी हू, तब तक यह बिडम्बनारूप बनता है और जैसे ही प्रभुका स्वरूप निरखा, अरहंतके गुण समझा, उसके साथ अपने गुण समझा तो उसमे एक शूरता प्रकट हुई कि ओह मैं क्या इन कल्पनाओमे फस रहा हू। बस उन कल्पनाओसे वह मुक्त हो जाता है। है क्या? मोह करे तो अकेला, मोह न करे तो अकेला कोई मोह करने से दुकेला नही हो जाता। अब यह अकेला बन गया। यह तो स्वरूप ही है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र सत् है, वह एक दूसरेका नही है। तो जब तक मिथ्याज्ञान रहता है तब तक जीव ससारमे रुलता है और इस मिथ्याज्ञानको नष्ट होनेका उपाय है आगमका बोध। कोई मौखिक समझा रहा तो वह भी तो आगमकी किरण है और कोई लिखा हुआ पढ रहा तो वह भी आगमकी किरण है। बोध बिना यह जीव इस तरह नष्ट हो जाता, पतित हो जाता जैसे कि डोरेके बिना रहने वाली सूई यदि डोरेसे गिर जाय तो फिर उसका पता नही पडता उसे बहुत-बहुत ढूँढना पडता फिर भी मिलना मुश्किल हो जाता और यदि सूईं सूत्र सहित है तो उसका तुरन्त पता हो जाता कि यह है सूई। तो ऐसे ही जो सूत्र सहित पुरुष हे मायने आगमके ज्ञानमे रहने वाला पुरुष है तो वह आगमके द्वारा अपने आत्माको पकड लेगा। तो सूत्रका जानना कल्याण चाहने वाले पुरुषोको अतीव आवश्यक है।

> पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
> सच्चेयण पच्चक्ख परसदि त सो अदिस्समाणो वि ॥४॥

(७४) ससूत्र पुरुषके आत्मदर्शन—पूर्व गाथामे सूई (सूची) का दृष्टान्त बताया है कि जैसे जो सूई सूत्र रहित है वह तो नष्ट हो जाती और सूत्र सहित है वह पकडमे आ जाती

इसी तरह जो पुरुष सूत्र सहित है सो तो नष्ट होता नही, ज्ञानमे रहता है, ससारमे मौजूद है यह जीव तो भी अगर सूत्र सहित है, आगमका सहारा लिए हुए है तो वह नष्ट नही होता, वह न दिखने पर भी अपने आपकी दृष्टिमे रहता है। परोक्ष रहो, सुसम्वेदन प्रत्यक्ष रहो। कोई कहे कि आत्माको आंखसे दिखा दो तो मानें तो भला बताओ उसे आंखोसे दिखाया जा सकेगा क्या ? अरे वह तो एक चिन्तन द्वारा अपने ज्ञानबलसे ही अपने आपकी जानकारीमें आयेगा। गजब कितना हो रहा कि यह खुद है, खुद ही चेष्टायें कर रहा है, खुद ही तर्क कर रहा है और खुद खुदके ज्ञानमे नही आ रहा। सो जब एक इन्द्रिय द्वारा ज्ञान करनेकी विधि बन रही है तब तक आत्माका प्रत्यक्ष स्पष्ट ज्ञान नही होता फिर भी आगमका कोई सहारा लेकर तके तो इसको आत्माका ज्ञान होता है और जब ज्ञानसे ज्ञानमे ज्ञान ही बस रहा हो तब सुसम्वेदन प्रत्यक्षसे जाना जाता है, तो आत्माके परिचयमे मूल सहारा तो आगमज्ञानका है, इसलिए आगम विषयक बोध जरूर होना चाहिए।

सूत्तत्थ जिणभणिय जीवाजीवादिबहुविह अत्थ।
हेयाहेय च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥५॥

(७५) हेयोपादेयविधिसे सूत्रार्थ व सप्ततत्त्वके ज्ञाताके सद्दृष्टित्व—सूत्रका अर्थ है, वह जिनेन्द्र देवका बताया है। अर्थकर्ता तो सर्वज्ञदेव हैं और शब्दोमे गूंथकर जो बनाया गया उसे कहते है ग्रथ। ग्रन्थकर्ता गणधरदेव हैं, सो आगममे जो जीवादिक तत्त्वोका वर्णन है उसे इस प्रकार जानना चाहिए कि इसमे हेय क्या है और उपादेय क्या है। जैसे जीव और अजीव ये दो तो मूल तत्त्व है, इन्हीके आधार पर तो आश्रव, बध, सवर, निर्जरा, मोक्ष बना। सो जीव और अजीव तो एक ज्ञेय पदार्थ है, जान लिया कि यह जीव है, यह अजीव है, और उसमे भी अगर उपादेय और हेय बुद्धि करनी है उसमे जो अपना अविकार चैतन्यस्वरूप है वह तो उपादेय है और इसमे चेतनाके अतिरिक्त जो भी भाव आते है वे सब हेय है। यह बात अपने आप तत्त्वमे आ जायगी, पर मूल बात यह श्रद्धामे लाना है कि अपना जो अविकार चैतन्यस्वरूप है वह ही दृष्टिमे रहे, उसका ही आलम्बन हो तो ससारसे पार हो सकते हैं। धर्मके नामपर लोग नाना प्रकारकी चेष्टायें करते हैं, पर उन चेष्टाओमे धर्म नही मिलता। वे चेष्टायें एक बाह्य साधन हैं ताकि इसका मन ऐसा बन जाय कि उस वातावरणमे रहकर यह धर्म पा ले, पर वह स्वय धर्म नही है। जितनी भी क्रियायें हैं और यहां तक कि पूजाकी क्रियायें, अन्य अन्य भी क्रियायें ये स्वय साक्षात् धर्म नही हैं, मगर वह एक ऐसा सुन्दर वातावरण है, एक साधन है, द्रव्य सजाया, खडे हुए, द्रव्य चढा रहे, कुछ समय होगा कि उस बीचमे इस पुरुषका ज्ञान जगे और अपने अविकार चैतन्य स्वरूप पर दृष्टि दे, धर्म हो

गया, इसीलिए तो यह व्यवहारधर्म कहलाता। धर्म तो अविकार चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि, उसका ही स्थिर होना यह है धर्म, पर इसके लिए जो साधन बने है वे व्यवहारधर्म कहलाते हैं तो जीव और अजीव ये दो तत्त्व तो मूल है और ये ज्ञेय तत्त्व है। इनका स्वरूप जान लें।

(७६) कर्मविपाकोदय व प्रतिफलनरूप आस्रवतत्त्वकी विवेचना व हेयता—आस्रव तत्त्व हेय है, बध तत्त्व हेय है, आस्रव मायने जीवमे से विकार उखडना यह तो है भावास्रव और उस जीवमे जो भाव उखडते सो उस कालमे उसका निमित्त पाकर पौद्गलिक कर्मोंमे कर्मत्व आ जाना यह है द्रव्याश्रव। बातें दो जगह चलती हैं—कर्मोंमे और जीवमे। कर्ममे कर्मकी बात चलती है और जीवमे जीवकी बात चलती है। और जो बात कर्ममे चलती है वैसी ही बात जीवमे चलती है। जैसे दर्पणके आगे कुछ दूरी पर पीला कपडा रख दिया तो उस दर्पणमें पीला फोटो आ गया। अब वह पीलापन दो जगह है—कपडे में और दर्पणमें। मगर कपडेमें तो कपडेकी पीलाई है और दर्पणमे दर्पणकी स्वच्छताका विकार है। दर्पणमें पीलाई है ही नही। दर्पण तो स्वच्छ है, पर दर्पणमे स्वच्छताका विकार आया तो विकारके रूपमें पीलाई है। कही दर्पणमें पीला रंग नही है। पीला रग तो उस कपडेमें है और यह पीलापन दर्पणमें फोटोके रूपसे है, प्रतिबिम्ब रूपसे है। स्वच्छताके विकार रूपसे है। तो दर्पणको तरह तो है यह आत्मा और पीले लाल आदि कपडेकी तरह हैं वे पुद्गलकर्म। तो रागद्वेषका अनुभाग असलमे तो उस पुद्गलकर्ममे है। वे रागद्वेष जीवमे नही है, पर जीवमे स्वच्छताका विकार इस ढगसे है कि उसमे रागद्वेषका भाव बना।

(७७) कर्मविपाक और जीवदशा—अब देखिये मुख्य रागद्वेष तो जीवका ही माना जाता। कितने ही लोग तो यह बात सुनकर कुछ उछल जायेंगे कि कही रागद्वेष कर्ममे भी होते हैं क्या? जीवमे ही मान रहे बहुतसे लोग कि रागद्वेष तो जीवमे ही होते हैं, कर्ममे रागद्वेष कहां धरे? मगर रागद्वेष प्रकृति, रागद्वेष अनुभाग ये तो जीवमे नही जाते। जीवमे कर्म सागरोसे बधे पड़े हुए है। जिस समय वे कर्म बँधे थे उसी समय कर्मोंमें अनुभाग बन गया, प्रकृति बन गई थी और वह प्रकृति, वह अनुभाग वहाँ सत्तामें पडा है। जिस कालमें उदय हुआ मायने उसमेंसे अनुभाग खिल उठा सो अनुभाग तो फैला वह कर्ममें, मगर उसका सन्निधान पाकर चूँकि जीव उपयोगमय है सो उपयोगमें प्रतिफलन आ गया। अब सारी विडम्बना जीवको हुई। कर्म तो अचेतन है। उसका बिगाड क्या, पर जीवको एक विडम्बना बन गई। जैसे कोई दो आदमियोका विवाद हो जाय, एक तो हो सज्जन बडा पुरुष और एक आ जाय दुष्ट पुरुष तो दुष्ट पुरुष सोचता कि मेरा क्या बिगाड है, इज्जत तो इसकी बिगडेगी? तो यों ही कर्ममें रागद्वेष उदित हुए सो उससे कर्मका क्या बिगाड है? बिगाड

तो इस जीवका है और देखो इस जीवका ऐश्वर्य कि यह जीव इतना बिगड गया तो भी इसमें कैसा ऐश्वर्य पाया जा रहा कि वह रागद्वेषके रूपसे इस तरह चेत रहा है। अनुभव कर रहा है। तो जैसे मूलमें लाल पीला तो कपडा है, दर्पणमें तो फोटोके रूपसे आया है, ऐसे ही रागद्वेषादिक अनुभाग तो मूलमे द्रव्यकर्ममे है और जीवमे तो प्रतिफलनके रूपसे आया है। जीवमे आया तो है प्रतिफलनके रूपसे, मगर यह मुख्य बन गया, विडम्बना बन गई और इस जीवका बिगाड बन बैठा। तो जीवमे रागद्वेष आना सो जीवमे भावाश्रव है और पुद्गलकर्ममे कर्मपना आना जो कि बधके समय आया करता है वह द्रव्याश्रव है। यह आश्रव हेय है, यह ससार, यह जन्म मरण जो कुछ भी विडम्बना चल रही है वह सब आश्रवके कारणसे चल रही है।

(७८) बन्धतत्त्वकी हेयता—आस्रव तत्त्व हेय है व बधतत्त्व भी हेय है। बधके मायने बँध जाना। जीवमे उसका सस्कार होना अथवा उस जातिके विभावोका निरन्तर उदय चलना यह तो है जीवमे बंध और कर्मोंमे उस कर्मपनेका बँध जाना कि यह तुम्हारा करोड सागर तक ये कर्म इस जीवके साथ रहेगे, उस कार्माणवर्गणामे कर्मपना रहेगा, यह द्रव्यबध है। यह बधतत्त्व भी हेय है। आश्रव और बधके कारण यह जीव मद वाला हो रहा है।

(७९) सम्वर तत्त्वकी उपादेयता—आश्रव बध हेय है और तब सम्वर निर्जरा उपादेय। कब तक उपादेय ? जब तक कि इसको मुक्ति प्राप्त नहीं। सम्वर तत्त्वको एक प्रवर्तन रूपमे नही देखा, किन्तु कर्मत्व न आना इस रूपमे ही देखा तो सम्वर तत्त्व तो अनन्तकाल तक रहेगा। सिद्ध होनेके बाद क्या कर्मपना आता है, पर आश्रवका प्रतिद्वन्द्व रूपसे देखा. तो यह सम्वर तत्त्व संसार अवस्थामे चलता है ज्ञानीके। सवर मायने कर्मपना रुक जाना, पौद्गलिक कार्माणवर्गणाओमे कर्मपना न आ सके, यह है द्रव्य सम्वर और अपने आत्मामे यह अशुभभाव न आ सकना यह है भावसम्वर। यह सम्वर तत्त्व उपादेय है।

(८०) निर्जरातत्त्वकी उपादेयताकी मीमांसा—जब तक सम्वर तत्त्व नही प्राप्त होता तब तक मोक्षमार्ग नही मिलता, और जो सवरपूर्वक निर्जरा होती है वह मोक्षमार्गका निर्जरा तत्त्व है वह निर्जरा कथचित् उपादेय है। सर्वथा उपादेय तो व्यवहारसे मोक्ष कहा और निश्चयसे अविकार निज चैतन्यस्वरूपमे निस्तरग रम जाना। तो अपने आपका जो अविकार स्वरूप है वह सर्वथा उपादेय है। हर सम्भव प्रयत्नोसे हमको अपने इस सहजस्वरूपकी ओर आना है। तो निर्जरा तत्त्व भी उपादेय हो गया, जो पहले बाँधे हुए कर्म हैं वे झड रहे हैं, उनका कर्मत्व खत्म हो रहा है। पौद्गलिक कार्माणवर्गणायें कोई वस्तु है, जैसे कि आँखोसे दिखने वाले ये पदार्थ कुछ वस्तु हैं। उनमे जब कर्मत्व आता है तो वहाँ भी व्यवस्था है अपने

आप और जब झड़ते हैं तो वहाँकी भी व्यवस्था हैं। कैसे झड़ते हैं ? वह एक मलका ढेर है, बहुत लम्बा विशाल कितने ही करोड़ सागरोकी स्थितिका। तो पहले तो कुछ समयका कर्म उस स्थितिसे हट-हटकर उससे पहलेकी स्थितिमे आता है फिर वे अगले-अगले कर्म हट-हटकर पहले स्थितिमे आते रहते हैं और ऐसी ही सारी स्थितिके कर्म हटकर कुछ पहली स्थितिमें हटकर आते हैं, फिर अपनी स्थिति पाकर कर्म दूर हो जाते हैं। तो निर्जरा तत्त्व भी इस जीवके लिए उपादेय तत्त्व है, पर सर्वथा उपादेय यो नही कि वह दृष्टि और लक्ष्यका विषय नही है। लक्ष्य तो अपना अविकार चैतन्यस्वरूप है।

(८१) **मोक्ष तत्त्वकी उपादेयता**—निर्जरा जब बन जाती है पूर्णतया तो संसार अवस्थामे रहने वाले जीवको मुक्तिकी जरूरत है, तब ही यह दुःख दूर होगा। तो उसके लिए प्रयोजन भूत सात तत्त्वोका परिज्ञान करना आवश्यक है। यह सब आगमके बिना हम को कहाँ से मिलता ? सो तब ही यह अपने अंतस्तत्त्वको जानता है तो वह प्रकट सम्यग्दृष्टि जीव है। सम्यग्दर्शन होनेपर इस जीवको फिर इस ससारमे कुछ अपना दिखानेकी उमंग नही रहती नही दिखाता है। उसके तो अद्भुत प्रसन्नता उत्पन्न होती है। न किसीको अपना दिखावा करना और न किसीकी कोई चेष्टासे इसमे क्रोध जगना। कोई अपराध भी करे तो यह भी क्षमा कर देता है। इसकी निरन्तर धर्मकी ओर दृष्टि रहती है। धर्मात्मा जनोमे अनुराग रहता है। ससारके भावोसे यह दूर रहता है। सब जीवोपर दयाका भाव है, क्योकि उसने सबका स्वरूप अपने स्वरूपकी तरह समझ पाया है इसलिए सदा अनुकम्पा रहती है। आगममे परोक्षभूत तत्त्वोको जैसे बताया गया है उसमे इसको सदेह नही होता, जैसा पुत्रको मा या पिता कोई बात बनावे तो वह पुत्र वैसा ही श्रद्धान करता है। तो ऐसे ही आगम जिनवाणी जैसा हमको बताते हैं सम्यग्दृष्टिजन उस ही प्रकार श्रद्धान करता है। नरक स्वर्ग लोक रचना सब कुछ उसे बिलकुल सच दिख रही है जैसा आगमका प्रतिपादन है, तो इस तरह जो ७ तत्त्वोका श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि है, और यह श्रद्धा मिलेगी आगमके श्रद्धानसे।

जं सूत्त जिणउत्त ववहारो तह य जाण परमत्थो।
त जाणिऊण जोई लहइ सुह खवइ मलपुज ॥६॥

(८२) **जिनोक्तसूत्रमे परमार्थ व व्यवहारका प्रतिपादन**—यह सूत्र पाहुड ग्रन्थ है, इसमे सूत्रका वर्णन है अर्थात् आगम। जो द्वादशाङ्ग और अंगबाह्य रूप है, इस सूत्रके सहारे ही मनुष्य अपने आपको खोज कर सकता है। इस सूत्रका सहारा ही न रहे तो अपनी खोज नही कर सकता। सूत्र मायने डोरा भी है। तो जैसे डोरेका सहारा न रहे तो सूई नही मिल सकती है। बड़ा विरल काम है और डोरेका सहारा रहे याने सूईमें डोरा पिरोया रहे

तो सूई गायब नही होती, वह मिल जाती है, ऐसे ही सूत्र आगम इनका सहारा रखे तो आत्माके दर्शन हो सकते हैं और इनका आश्रय छोड दें और यदवा तदवा मनकी कल्पनासे निहारे तो इसमे आत्माके दर्शन नही होते। वह सूत्र जिनेन्द्रदेवके द्वारा कहा गया है सो व्यवहाररूप और परमार्थरूप है। उसको जानकर योगी पुरुष सुख पाते है और कर्ममलको दूर करते हैं। जैनागम स्याद्‌पदसे मुद्रित है, क्योकि स्याद्वाद बिना वस्तुका पूरा परिचय नही होता। तो निर्णयमे तो निश्चय व्यवहार सब काममें आता है, पर कल्याणकी दिशामे जब बढते हैं तो व्यवहार गौण होकर निश्चय मुख्य होता। फिर निश्चय गौण होकर शुद्ध-नय रह जाता, फिर किसी भी नयका विकल्प नही रहता, अनुभव मात्र दशा होती है। परमार्थ और व्यवहार। परमार्थका तो अर्थ यह है कि परम अर्थ। यथार्थ जैसा सहजस्वरूप है उस रूपकी निरख, और व्यवहारका अर्थ है कि सहज स्वरूपके अतिरिक्त उसके परिचय के लिए अन्य-अन्य विषय, उनका प्रतिपादन व्यवहार कहलाता है। व्यवहारके बिना पर-मार्थका उपदेश नही बन सकता। व्यवहारके बिना परमार्थका और किसीको निर्देश नही किया जा सकता इसलिए व्यवहार उपकारी है, किन्तु वह परमार्थके प्रतिपादनके लिए ही है। और यह व्यवहारनय ऐसा उपकारी नय है कि जैसे माँ अपने प्राण गवाँ कर भी अपने बच्चेकी रक्षा करती है इसी तरह व्यवहारनय अपना विनाश करके निश्चयको उद्योतित करता है।

(८३) **आगमकी सर्वाङ्गरूपता व अध्यात्मकी आगमांशरूपता**—आगम चार अनु-योगोमें है। जैसे कुछ लोग कहते है कि यह आगमकी बात है, यह अध्यात्मकी बात है, ऐसे जैन शासनमें दो भेद नही पडे हैं कि यह तो आगम है और यह अध्यात्म है, किन्तु आगम और अध्यात्मका अर्थ क्या है कि जो सर्व वर्णन है और उस आगमके वर्णनमें से केवल आत्माका ही वर्णन होना वह अध्यात्म है। तो अध्यात्म आगममें गर्भित है। आगम अलग वस्तु हो, अध्यात्म अलग वस्तु हो ऐसा नही है किन्तु अध्यात्म भी है और इसके अतिरिक्त सर्व प्रकारका वर्णन भी है। आगममे सामान्यसे, निश्चयसे, व्यवहारसे सब तरहका वर्णन है। आत्माका, पुद्गलका, धर्मादिक द्रव्योका, अशुद्धका, शुद्धका सबका वर्णन है, उन वर्णनो मे से केवल आत्माका वर्णन होना अध्यात्म है और उसमे सामान्यतया वर्णन होना सो निश्चय है और विशेषतया वर्णन होना सो व्यवहार है, क्योकि सामान्य वर्णनमे अभेद रहता है, विशेष वर्णनमे भेद हो जाता है। तो ऐसे सामान्य विशेष दोनो रूपसे आत्माकी ही बात का निरूपण होना अध्यात्म है। तो इस प्रकार जिनशासनका बोध करें।

(८४) **आगमकी आज्ञाहेतुद्वयसाध्य श्रद्धा**—आगमविषयक दूसरी बात है आज्ञा और

हेतुकी। इन दोनोके आश्रयसे आगमका अभ्यास करें, केवल हेतुसे ही ज्ञान बनावे तो वह आगमसे बाह्य बात है। हेतु उसका सही है जो आगमकी श्रद्धाके साथ हेतुवोसे जुदा कर रहा है और जिन विषयोमे हेतु न चले, युक्ति न चले वह आज्ञासिद्ध कहलाता है। तो आगमका सहारा लेना प्रत्येकको आवश्यक है। कोई युक्तिसे सिद्ध करे उन सात तत्त्वोको, एक तो आगमका सहारा लिए बिना युक्तिसे भी सिद्ध नही कर सकते, क्योकि कुछ उसने पहले आगम से पढा है, उसके बारेमे मनन किया है तब वह युक्ति और हेतुवोको अब सिद्ध कर रहा है। कोई आगमके बिल्कुल विपरीत रहे और सोचे कि आगम क्या, उससे मुझे कुछ मतलब नही, मै तो युक्तियोसे निकालता हू तो यह उसका एक स्वच्छद वचन है और आगमकी श्रद्धाका उसने अपमान किया है। आगमकी श्रद्धा रखते हुए युक्तियोसे सिद्ध करना यह है रीति और जिन वचनोमे युक्ति न चल सके उनको आज्ञासे मानना, जैसे स्वर्गोंके विमानोकी लम्बाई-चौडाई, स्वर्ग नरककी रचना, अब यह कोई युक्तिसे सिद्ध हो सकेगा क्या कि यह विमान इतना ही लम्बा है? इतना ही चौडा है या यह नरक इतना, पटल इतना बडा है, तो यह आज्ञासे सिद्ध होता है, पर ७ तत्त्व, ६ द्रव्य इनका निर्णय युक्तिसे भी है और आगमसे भी है, पर यहां कोई आगमकी अवहेलना करके और अपना कौशल दिखानेके लिए ऐसा ही कहे कि हम आगमको कुछ नही मानते, जो युक्तिमे उतरेगा सो ही हम मानेंगे, सो आगमकी श्रद्धा से हटकर जो केवल युक्तिकी ही बात कहे वह स्वच्छन्द वृत्ति है। युक्ति लगाये, पर आगमकी श्रद्धासे हटे नही, इस तरह परमार्थ और व्यवहार दोनोको जो जानकर आत्माकी ओर आता है वह योगी सुख पाता है और मुक्ति पाता है।

(८५) एक ही वाक्यमें निश्चय, व्यवहार दोनोंका दर्शन—देखिये—जब किसी वस्तुका निर्णय करने चलते हैं, उस वस्तुको अभेद विधिसे निरखते है तो वह सामान्य बन जाता है। एक विषय करने वाला निश्चय है। जब भेद विधिसे देखते हैं तो उसका विशेष बनता है। उनका वर्णन करने वाला व्यवहार है। जैसे आत्मा एक विविक्त शुद्ध ज्ञानभावस्वरूप है, देखिये कैसा ही निश्चय आप बोलें उस ही मे व्यवहार पडा हुआ है और कैसा भी व्यवहार बोले, उसमे निश्चयका लक्ष्य नही है तो वह भी प्रयोजनवान नही है। तो प्रत्येक व्यवहारमे निश्चयकी गध, प्रत्येक निश्चयमे व्यवहारकी गध, क्योकि यह तो एक जानकारीका उपाय है। निरपेक्षनय मिथ्या होता है, सापेक्षनय सम्यक् होता है, पर अनुभव दशामे किसी भी नयका आलम्बन नही रहता। ऐसे ही समझाया गया कि यह आत्मा स्वयं सहज अविकार शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, यह निश्चयसे बताया गया, मगर इस उपदेशमे भी कई तोड़े हुई हैं और जितना यह समझा गया कि स्वय सहज सत् अर्थात् किसी

परकी अपेक्षा न रखकर किसी परका सम्बंध न जोडकर जानना। तो जैसे सत्त्व बताना पर के असत्त्वके साथ है उसको परके असत्त्वका भी निर्णय है तो ऐसे ही निश्चयनयसे जान रहे कि हालतमे परसे निराला है, स्वभावसे ही देखता है आदिक जो छाँट बनी है और उसके सहारे निर्णय है वह एक व्यवहारकी ही तो विधि है, मगर दृष्टिका अतर है। एक ही वचन निश्चयरूप भी हुआ, शुद्ध अशुद्ध व्यवहाररूप भी हुआ।

(८६) एक ही वाक्यमें निश्चय व्यवहार दोनोके दर्शनका उदाहरण—जैसे यह बात शुद्ध निश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनयसे जल्दी समझमें आ सकती है। कैसे कि शुद्ध निश्चयनयका विषय है कि प्रभु केवलज्ञानी है, अब उस केवलज्ञान शुद्ध पर्यायको उस द्रव्य मे अभेद करके निरख रहे, इस दृष्टिसे निरखनेपर वह निश्चयनय है और वह प्रभु आत्मा एक अखण्ड पदार्थ है। उसमे से एक केवलज्ञान पर्यायको देख रहे हैं तो यह भेद किया उससे व्यवहारनय है। आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसे अनन्तगुण हैं, ऐसा भेद करके बताया, इस कारण व्यवहार है, पर आत्माकी अभिन्न शक्तियोको आत्मामे ही बता रहे हैं, इस कारण निश्चय है। बात एक ही कही जा रही है, मगर निरखनेकी रीतियाँ दो हैं। कुछमे एक ही वाक्यमे निरखनेकी रीति दो होनेसे अब जो प्रधान हो आपके आशयमे उस नयका नाम बोला जायगा। तो वस्तुको निरखें। नय विशेषरूपसे देखें तो जो सामान्य रूपसे देखनेकी रीति है वह तो है निश्चयनय और जो विशेषरूपसे देखनेकी रीति है वह है व्यवहार नय। सो विवक्षासे उस वस्तुके ज्ञानकी साधना होती है। तो आगममे अभेदविधिसे, भेदविधि से, सामान्यसे, विशेषसे, सब प्रकारसे वर्णन है। तो उन सब वर्णनोसे उस वस्तुका स्वरूप सिद्ध करना चाहिए।

(८७) अविकार सहज स्वयं सद्रूपताकी दृष्टि पाये बिना भूतार्थकी चर्चामे विडम्बना—एक बात यहाँ और समझना चहिए कि व्यवहारको अभूतार्थ कहा है और निश्चयको भूतार्थ कहा है, तो भूतार्थका क्या मतलब और अभूतार्थका क्या मतलब? यह शब्दसे ही निकालो भूत कहते हैं सत् हुए, जो स्वय सत् रूप हैं वे तो भूतार्थ हैं और जो स्वयं है अपने आप परका निमित्त पाये बिना और सदा है वह तो भूतार्थ कहलाता और जो सदा नही, स्वय नही, औपाधिक है वह व्यवहार है। हैं दोनो ही सही, क्योकि स्वयं सद्भूत वस्तु है ही और यह भी लगा हुआ है साथ कि कर्मका निमित्त पाकर जीवकी यह ससरणदशा बन रही है। कोई कहे कि यह तो अज्ञानमे बन रहे तो वह अज्ञान भी तो आगंतुक है, औपाधिक है। हो तो रहा है। तो कर्म सहित है जीव यह भी बात सही है और खालिस एक चैतन्यमात्र है जीव, यह भी बात सही है। मगर जब केवल स्वयभूत अर्थको देख रहे हैं तो उससे जो

द्रव्यका निर्णय किया कि वास्तवमे जीव तो सहज चैतन्यस्वरूप है तो इस दृष्टिमें विकार जीव के स्वरूप नही है। जब स्वरूपकी दृष्टिसे वस्तुको निरख रहे हैं, स्वभावमात्र आत्माको निरख रहे हैं और वही परिपूर्ण वस्तु है जो शाश्वत् है, तो उस दृष्टिमे विकार व्यवहार ये प्रतिष्ठा नही पाते और इस कारण इस दृष्टिमे व्यवहार असत्यार्थ है, क्योकि जीवके स्वरूपमे विकार नही है। मगर इस दृष्टिको तो कोई रखे नही व्यवहार अभूतार्थ है, असत्य है। केवल इतनी ही सीख रटे तो उसने नयोका मर्म नही पाया और ऐसा कहते रहने पर भी जीवनमे किसी भी समय वह अनुभव जैसी तैयारी नही कर पाता, किन्तु जो जानता है कि हमको विपत्तिसे हटना है और जो शान्ति धाम है उसमे आना है। वही तो पौरुष करेगा कि मैं इस विकार व्यवहारके विकल्पको त्याग कर अपने इस शात स्वरूपमे पहुचू। जो विपत्तिमे पड़े है और विपत्ति मान रहे है और मुखसे कह रहे कि कोई विपत्ति नही तो उससे कही भला मार्ग तो न मिल जायगा। हाँ कोई स्वरूपकी निगाह रखकर वहाँ निरखें और उस ही मे अपने आपका अनुभव करें और उस ही के लिए पक्का हो जाय तो उसका यह कहना ठीक है कि विकार नही। इस पर कोई आपत्ति नही, इस पर कोई कष्ट नही। मगर दृष्टि हो उस जीव तत्त्वकी जो कि सहज स्वय सद्रूप है।

(८८) **अविकार अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि प्राप्त होनेपर स्वपरका यथार्थ दर्शन**—परके लेपसे रहित केवल अपने आपके स्वभावरूप स्वयभूत अर्थकी जिसे दृष्टि मिली उसका सचमुच मे सारा ढाचा बदल जाता है उसमे प्रशम सम्वेग अनुकम्पा और आस्तिक्य ये स्वय सहज प्रकट हो जाते हैं। जिस जीवका भवितव्य अच्छा है, कर्म मुक्त होनेका निकट समय है उस जीवको इस केवल स्वरूपका परिचय मिलता है। जब यह मैं जीव सत् हूँ तो वह मैं केवल अपने आप अपनी सत्तासे किस रूपमे हू बस यह परखना है और यह दृष्टिमे आते ही यह उस का पूरा निर्णय हो जाता कि मेरा अणु मात्र भी नही है, परिजन तो मेरे क्या होगे ? वैभव तो मेरा क्या होगा ? मेरा इस ज्ञानस्वरूप अंतस्तत्त्वके अलावा जगतमे कुछ नही है। था ही नही, हो ही न सकेगा। मैं तो यह पूर्ण एक ज्ञानस्वरूप अतस्तत्त्व हू, इसमे मेरा ही परिणमन चल रहा है। और जो परिणमन चल रहा है वह समय-समयमे एक एक है, अखण्ड है। जैसे हम अपने इस सहज सत्को मुखसे नही बता सकते, इसी प्रकार समय-समयपर जो जो मेरा एक-एक परिणमन निरन्तर चल रहा है उसको भी नही बता सकते। और जैसे हम अपने उस सहज स्वरूपको गुणभेद करके बता पाते हैं कि इसमे ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, चारित्रगुण है, भेद करके बता पाते, व्यवहारसे बता पाते इसी प्रकार मेरा प्रति समयमे क्या क्या परिणमन चल रहा है उसको भी हम भेद करके ही बता सकते है कि यह ज्ञानगुणका

परिणमन है, यह दर्शन गुणका परिणमन है, वह भी मोहके आश्रयसे ही कहा जा सकता है।

(८९) आत्माकी उपादेय सहजकला—भैया! सहज कला एक यह आनी चाहिए कि मैं सहजचित्प्रकाश मात्र हूं। इस कलाको मनुष्य लोग बहुत-बहुत अध्ययन करके पाते हैं और कोई कोई तो बिना अध्ययनके भी वह कला प्राप्त कर लेते हैं जैसे कि बहुतसे पशु-पक्षी वे पढे लिखे कहाँ होते फिर भी सम्यक्त्व पा लेते हैं। एक दृष्टिकी बात है। जैसे देखा होगा कि किसी कार्डमे कोई दो तीन वृक्ष बने होते हैं और वे वृक्षके चित्र इस ढगसे बने होते हैं कि उनके बीचमे जो खाली स्थान रह जाता है उसमे शेर, पक्षी, मनुष्य आदिके भी चित्र बन जाते है। स्याहीके नही किन्तु खाली कार्डमे। अब उस कार्डको निरखकर लोग हैरान हो जाते कि कहाँ इसमे पशु, पक्षी, मनुष्य आदि बने? यहाँ तो केवल वृक्ष दिख रहे हैं। वे वृक्ष तो देख रहे पर खाली जगहको नही देख रहे और एक बार दिख जाय, बतानेसे दिख जाय कि देखो यह इस तरहका जो आकार है यह है पक्षी, यह है शेर और यह है मनुष्य। बस एक बार इस तरहका परिचय हो जानेपर फिर दुबारा उनको देख लेनेमे असुविधा नही रहती। झट दिख जाता कि यह है। जिसकी दृष्टिमे एक बार आ गया उसको तो झट दिख जाता और जिसकी दृष्टिमे एक बार भी नही आया वह ढूंढते-ढूंढते हैरान हो जाता। वह दूसरोके कहनेसे बहुत-बहुत पुरुषार्थ भी करे तो भी बाह्यमे डोलता रहेगा। बहुत सीधा साधन है अपने आपको निरखनेका जैसा कि पशु पक्षी किया करते हैं अन्य साधारण जन किया करते हैं। वह उपाय यह है कि जगतके समस्त पदार्थोंको भिन्न असार जान लें और यह जान लें कि विकार तो कर्मका सन्निधान पाकर आये है, इन्हे मैं अपने आप नही कर पाता। केवल मैं ही बिना निमित्त पाये विकार कर लू ऐसी बात नही है अतएव विकार भी असार हैं। तो परभाव और परपदार्थ दोनो को असार भिन्न जानकर उनसे अत्यन्त उपेक्षा कर लें और सबका ख्याल छोड दें तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा स्वय ही अनुभवमे आता है। तो सर्व तरहसे निर्णय करके फिर सबका ख्याल भूलकर परम विश्राम मे बैठें, वहाँ यह अनुभव जगता है।

(९०) भूतार्थ अभूतार्थके अर्थकी मीमांसा—जिनेन्द्र देवके द्वारा कहा गया सूत्र व्यवहाररूप है और परमार्थ रूप है उसे जानकर योगीश्वर सुख पाते हैं और मल ज्ञानपुञ्ज से दूर करते हैं। व्यवहाररूप जानना, परमार्थरूप जानना। इन दो सही ज्ञानोमे एक ऐसा प्रभाव है कि यह जीव विकारसे हटकर अविकार स्वरूपमे आ जाता है। भूतार्थ और अभूतार्थ शब्दश देखें तब यह अर्थ बना कि जो स्वय सहज भूत अर्थ है वह है भूतार्थ और जो स्वयं सहज नही है वह सब है अभूतार्थ। और जो स्वयं सद्रूप नही है, किन्तु समझानेके

लिए भेद करके कहा जाय वह है अभूतार्थ। अभूतार्थके मायने असत्य नही, किन्तु वह तत्त्व कौन निरपेक्ष है, कौन सापेक्ष है, क्या अभेद है, क्या भेद है, इसका निर्णय होनेपर निरपेक्ष अभेद अर्थ होता है भूतार्थ सापेक्ष और भेद वाला तत्त्व है अभूनार्थ। जब इस मूडमे आकर भूतार्थ अभूतार्थका परिचय किया जाय कि भूतार्थ मायने सत्यार्थ, अभूतार्थ मायने असत्यार्थ तो अब उसके परखनेकी रीति दूसरी हो जायगी। प्रथम तो यह ही जानें कि सत्यार्थ कहते किसको है ? सति भव सत्य किसी सत्मे अपने आप स्वतन्त्रतया जो हो उसे कहते हैं सत्य। इस अर्थमे भूतार्थ और सत्यार्थमे अन्तर नही आया। असत्यार्थका अर्थ करें कि जो स्वय सहज सत्मे नही है वह है असत्यार्थ। तो इसमे भी अभूतार्थ और असत्यार्थमे अन्तर नही आया, लेकिन कोई सत्यार्थका अर्थ कहे सच और असत्यार्थका अर्थ कहे झूठ तो इसकी रीलि बदल जाती है।

(६१) **सत्यार्थ असत्यार्थमे नयवाद**—स्वभावदृष्टि जब की जा रही हो तब तो सहज स्वभाव भूतार्थ है और नैमित्तिक भाव असत्यार्थ है याने स्वभावदृष्टिके मूडमे यह निर्णय पडा है कि जो स्वयं सहज सत् हो वह है सत्योर्थ और जो स्वय सहज सत् नही है, किन्तु निमित्त सन्निधान पाकर उत्पन्न हुआ है वह झूठ है, क्योकि स्वभावमे विकार नही है, पर जो विकार हो रहा है वह क्या झूठ है ? विकारका फल है आकुलता, वह भी मिल रही। विकार रूप परिणमन, वह भी पर्यायमे है। झूठ कैसे ? तो जब निमित्त नैमित्तिक योगकी ओरसे देखा, घटनाकी ओर देखा, बीन रहोकी ओरसे देखा तो वे औपाधिक भाव विकार सच है किन्तु स्वभावदृष्टि करके निरखें तो वहाँ विकार नही पाया गया, अतएव असल है, ऐसे सापेक्ष निर्णयसे जिसने व्यवहार और परमार्थका निर्णय किया है वह ही पुरुष कर्मका क्षय करता है। अब अभेद और भेदकी बात देखिये—अभेदसे आत्मस्वरूपको जाना तो बस जो जाना गया सो ही कह बैठेंगे तो भेद आ जायगा। जाननेमे तो ठीक रहा, अभेद रहा, पर उसके कहनेके लिए शब्द नही है जो विधि रूपसे बताया जा सके। तब उस ही ज्ञानस्वरूप आत्मा का गुणभेद करके समझाना कि जिसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है वह आत्मा है, तो अभेद अखण्ड स्वभावकी अपेक्षा तो ये गुण असत्यार्थ है, क्योकि कुछ अलग-अलग पडे हुए नही हैं, वह एकमे एकको समझनेके लिए यह भेद बनाया गया था। तो स्वभावदृष्टिकी तुलनासे तो असत्यार्थ है, पर क्या कभी झूठ परिचयसे सही ज्ञान जग सकता है ? मगर यहाँ तो गुणोके परिचयसे आत्माका बोध हो रहा है। ठीक हो रहा है, कही चूकते भी नही है। तो बात क्या है कि जब हम उस प्रतिपादन और समझकी निगाहसे देखते है तो आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ये सब बातें सही हैं, सत्यार्थ हैं, किन्तु स्वभावदृष्टिमे भेद और औपाधिक

भाव असत्यार्थ है और व्यवहारदृष्टिमे समझानेके मूडमे, बीत रहीके मूडमे विकार गुण भेद सब सत्यार्थ है। तो बात यहाँ ऐसी जम रही है कि जब स्वभावदृष्टिसे देखते हैं तो बीत रही बात झूठ और जब बीत रहीकी निगाहसे देखते हैं तो बीत रही की बात सच है।

(९२) प्रयोजनकी अपेक्षा सत्यार्थ असत्यार्थका निर्णय—क्या ऐसा नही कहा जा सकता कि बीत रही की निगाहमे देखें तो स्वभाव असत्य है। कहा तो जा सकता, मगर ऐसा कहनेका कोई प्रयोजन नही है। अगर कोई पर्यायकी मुख्यतासे ही दृष्टि कर रहा है तो उसकी निगाहमे पर्याय है, स्वभाव नही है। इस रूपसे पर्याय दृष्टिमे स्वभावकी बात असत्यार्थ है। मगर ऐसा कहनेका प्रयोजन नही, इसमे कोई कार्य सिद्ध नही। अत. इतना ही कहना योग्य होता है कि पर्यायकी दृष्टिमे पर्यायकी बात सत्यार्थ है, लेकिन स्वभावकी तुलनामे बीत रही बात असत्यार्थ है, क्योकि स्वभावमे विकार नही है। तो जिनागमका जिसने भली प्रकार अभ्यास किया वह तो कल्याणसे च्युत नही होता।

जिसकी नयोकी समझ कमजोर है या विपरीत है वह अपने कल्याणमार्गसे च्युत हो जाता है। कैसे ? यदि यह ही मान लिया जाय कि जीवमे विकार हैं ही नही तो फिर अब कल्याण करनेकी जरूरत ही क्या है ? कल्याण तो उसे कहते है कि भाई कोई आपत्ति है, विकार है तो उसको हटाने और समझाने वाली स्थिति लाना इसको कहते हैं कल्याण। जब यह मान रखा है कि आत्मामे विकार होते ही नही हैं तो कल्याणकी क्या जरूरत ? और कोई यह मान ले कि आत्मामे तो योग्यता ही है विकार करनेकी तो भाई विकार हटाए ही कैसे जा सकते ? आत्मा नित्य है और आत्माकी ही योग्यता है सो वह भी नित्य है और उससे ही विकार आया सो वह भी नित्य रहा। अब मेटनेकी गुजाइश ही कहाँ रही ? तो जो सही समझ बनाता है कि विकार जीवके स्वभावमे नही, किन्तु कर्मविपाकका सन्निधान पाकर ये विकार जगे है, जगे आत्मामे हैं इसलिए इनको हटानेकी आवश्यकता है और स्वभाव मे ये है नही इसलिए ये हटाये जा सकते हैं। तो विभावोसे प्रीति तजना, स्वभावमे लीन होना बस यह है कल्याणका रूप। तो आगमका श्रद्धान और आगमके श्रद्धानसे लाभ उठाना यह बात उन जीवोके बनती है जो आगममे आस्था बनाये हैं और जिनमे युक्ति चलती है उनको युक्तिसे भी जास रहे वह पुरुष आगमके अभ्यासका लाभ उठाता है। तो ऐसा आगम का कथन समझकर, उसकी श्रद्धा रखकर यथाशक्ति आचरण करना।

(९३) आगमकी आस्था बिना अहितकारी स्वच्छंद प्रवर्तन—इस कालमे जो स्वच्छद मन वाले हो जाते हैं याने गुरु सम्प्रदायसे चले आये तत्त्वमे आस्था न करके जो मेरा मन मानेगा वह है ठीक और जो न मानेगा वह नही है ठीक। आस्था तो न रखे किन्तु अपने

ही मनको वह निर्णयके लिए सौंपा है तो पुरुष तो छद्मस्थ हैं, स्वल्पबुद्धि वाले हैं, वे परीक्षा करके ही उसे ठीक समझें इस लायक योग्य नही हैं, मगर आस्थाके साथ परीक्षा करना उस परीक्षा करनेकी मनाई नही, त्रुटियोको समझनेका निषेध नही, पर आस्था सहित परीक्षा करे तो उसको सफलता मिलती है, और जो आस्थाको जडसे फेंककर परीक्षा करने जाय तो उसकी यदवा तदवा प्रवृत्ति बनती है। तो आगमकी आज्ञाको प्रधान रखकर परीक्षा करनेमें दोष नही, किन्तु परीक्षाको ही प्रधान रखकर चलनेमे पतनकी सम्भावना है ही। सो स्याद्वाद द्वारा आगमके वाक्योका सही अर्थ लगाकर फिर जो नय, जो दृष्टि हमारे हितके लिए प्रमुख है उसकी मुख्यतासे उसका लक्ष्य रखकर आगे बढना। जैसे व्यवहार और निश्चयमे अपेक्षासे एक परम शुद्ध निश्चयनय भला लगा तो परम शुद्ध निश्चयनयका विषय ही सत्य है बाकी सब असत्य है। तो सारा आगम जितना भी है यह परम शुद्ध निश्चयनयका विषय तो नही है। पूरा द्वादशांग यह परम शुद्ध निश्चयनयका विषय नही, क्योंकि परम शुद्ध निश्चयनयका विषय तो अपना अखंड अभेद ज्ञानस्वरूप ही है। उस आगमको हमने जाना परम शुद्ध निश्चयनयका विषय और उसको अपनेमे उतारा वह है विषय। द्वादशांग तो उसका सकेत है अर्थात् द्वादशांग स्वयं साक्षात् व्यवहार है। उसमे रत्न पड़े है, उनका उपयोग करना। कथनी जितनी होती है वह व्यवहार है। तो ये शास्त्र अचेतन हैं या कथनके शब्द है। परम शुद्ध निश्चयनयका विषय अचेतन नही अध्यात्ममे, परमशुद्ध निश्चयनयका विषय भेद नही, किन्तु एक अखण्ड तत्त्वका परिज्ञान। सो ये ज्ञानरूप तो नही हैं शास्त्र। शास्त्र सब सकेत हैं, प्रतिपादन है। तो व्यवहार अभूतार्थ है, असत्य है के मायने है समस्त शास्त्र असत्य है, अतः नयवादसे निर्णय बनावें, शास्त्र असत्य नही, असत्य उपायसे सत्यकी खोज नही बनती, यह सब सत्य उपाय है, पर स्वभावकी रुचि है, स्वभावका ही परिचय चाहिए, वह है अपने आपमे, उसको निरखियेगा अपने प्रयोग द्वारा। अपना काम निकाल लिया जायगा, मगर जिस तीर्थके द्वारा, जिस प्रवृत्तिके द्वारा, जिस अभ्यासके द्वारा हम इस स्वभाव तक आ पाये हैं उसका उपयोग दूसरोको भी होने दिया जाय। उसे झूठ कहकर दूसरोको एक मौका हटा देना यह योग्य नही है। तो निश्चयका, व्यवहारका, परमार्थका और व्यवहारका सही निर्णय जानकर परमार्थकी मुख्यतासे आगे बढना मुमुक्षुका कर्तव्य है।

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्व पाणिप्पत्तं सचेलस्स ॥ ७ ॥

(६४) **सूत्रार्थविनष्ट मनुष्यकी अपात्रता**—जो सूत्रका अर्थ है, सूत्रका पद है, वह जिस की बुद्धिमे नही, जो उससे अनभिज्ञ है, सूत्रार्थ पद जिसके नष्ट है ऐसा जीव तो प्रकट मिथ्या-

दृष्टि है। ऐसे पुरुषसे जो सचेत है, वस्त्र सहित है उसे हँसी कौतूहल खेलमे भी पाणिपाय न करना चाहिए अर्थात् आहारदान न करना चाहिए, याने धर्मबुद्धिका नाता न रखना चाहिये और कोई इसीसे यह भी ध्वनि होता है कि कोई वस्त्ररहित है और सूत्र अर्थ अक्षर पद जिसके विनष्ट है और वह वस्त्र धारण कर मुनि कहलावे वह जिन आज्ञासे भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि है। इसमे अपनी प्रवृत्तिकी शिक्षाके लिए इसके कितने ही अर्थ निकल आते हैं। जैसे जो अपने को मुनि बताये और वस्त्रधारी है वह भी अयोग्य है। भक्तिके पात्रदानके योग्य नही है, और जो वस्त्रसहित है अपनेको गुरुपना जतावे है वह भी भक्ति और पात्रदानके योग्य नही है, क्योकि वह जिनसूत्र जिन अर्थसे भ्रष्ट है। व्यवहारमे ऐसा ही वेश रखा जाना चाहिए जो जिस पदवीमे सही माना जाता है, अब वहाँ यह बताया गया है कि उत्कृष्ट श्रावकसे पहले याने १० वी ११ वी प्रतिमासे पहले किसी प्रकारका भेष रखना वस्त्रसहितमे भी जिस भेषमे यह जचे कि ये गुरु हैं, ये भेष रखते हैं गुरु बतानेके लिए, तो वहाँ आगमका श्रद्धान नही है। जैसे सर्वसाधारण हैं, जैसा कि अव्रती लोग रहते है वैसे ही कपड़े पहिनकर उत्कृष्ट श्रावकसे बहुत रहते हैं, अन्तर इतना है कि अव्रतियोको तो ऊनके कपडोका, रेशमके कपडोका कुछ विवेक नही चूकि यह प्रतिमाधारी है, यह विवेक पूर्वक रहता है, मगर कोई भेष रखना यह उत्कृष्ट श्रावकस पहले बताया नही गया।

(९५) जैनशासनमे उपास्य व पूज्य तीन लिङ्ग—जैन शासनमे तीन लिंग ही बताये गए हैं—(१) मुनिलिङ्ग (२) उत्कृष्ट श्रावकका लिङ्ग और (३) आर्यिकाका लिङ्ग। इन तीन लिङ्गोसे अतिरिक्त कोई जैनशासनमे लिङ्ग नही है, ऐसा दर्शनपाहुडमे बताया ही गया है। तो स्वयकी रक्षा चलती है। मुमुक्षुको यह चाहिए कि अपना भेष कुछ अलगसे जचे, एक जचाव बने ऐसा बनावटी भेष न रखना चाहिए। और रखें कोई ऐसा तो जो विवेकी सम्यग्दृष्टि समझदार श्रावक हैं वे उसे धर्मबुद्धिसे विनय नही करते, पात्रदान नही करते। आगमकी श्रद्धासे प्रवृत्ति भी करना और ज्ञानभावना आदिक भी करना जो इस तरह अपनी चर्या रखता है उसको सुगमता है कि वह मार्गमे चलेगा अन्यथा मायाचार आ जाता है। जहाँ भेष बताया नही वहाँ भेष रख लेना, इसमे विकट मायाचार है। तो मायावी हृदयमे धर्मका प्रवेश नही होता। तो जिसको कल्याणकी भावना है वह अपने ही पद के अनुसार व्यवहारभेष रखता है और न रखे तो उसने आगमकी अवहेलना की। तो आगम का अर्थ पद ये कुछ भी न जाना इस कारण वह मिथ्यादृष्टि है। चाहे जगतको अपना कैसा ही रूप दिखाये और कुछ भी प्रसिद्धि करे। तो जिन सूत्र अर्थ अक्षर इनकी सही श्रद्धा सहित युक्तिवादमे बढना और प्रवृत्तिमे बढना यह शिक्षा इस प्रकरणमे दी गई है।

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्ग गच्छेइ एइ भवकोडी।

तह वि ण पावइ सिद्धि संसारत्थो पुणो भणिदो ॥८॥

(९६) **आगम श्रद्धान व आत्मज्ञानके बिना सिद्धिकी अशक्यता**—जो मनुष्य सूत्रके अर्थ पदसे भृष्ट हैं, आगमके कथनको सही रीतिसे नही लेता है और उसकी आस्था भी नही है वह पुरुष हरिहरके तुल्य भी हो जाय, रुद्र और नारायणके तुल्य भी हो जाय तो भी अनेक ऋद्धि युक्त होने पर भी वह सिद्धिको प्राप्त नही कर सकता है। मोक्षमार्गमे वह नही है। जिसने अपने केवलके स्वरूपको जाना उसकी धुन अपने स्वरूप भावनाकी ही रहती हैं और वह पुरुष इस केवलके ध्यानके सहारे कैवल्य प्राप्त कर लेगा। किन्तु जिसको कैवल्य दृष्टिकी धुन लगी है वह पुरुष अपनी उस धुनमें, उस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए जो बाधक हो रहे हैं उन सब बाधावोको हटा कर ही रहेगा। वे बाधायें क्या है? परद्रव्यका ग्रहण। जहाँ परवस्तु रखे, परद्रव्यका ग्रहण अपनी आजीविकाके लिए खेती आदिक रखे, परद्रव्यका ग्रहण सर्वपरका ग्रहण तज देगा तो रह क्या जायगा? यथाजात रूप। दिगम्बर स्वरूप। वह रह गया तो दिगम्बर बननेके लिए दिगम्बर नही बने किन्तु आत्मस्वभावके बाधक कारणोको हटाया जानेके पुरुषार्थमें दिगम्बर बन गए। ऐसे केवलके स्वरूपको ग्रहण किए बिना कदाचित् बड़ा पुण्य उपार्जन करके स्वर्ग भी जाय तो भी वह करोडों भवो तक रुलता ही है। वह मुक्तिके योग्य नही है। जिसने आत्माके भूतार्थ स्वरूपका परिचय नही पाया, जब मैं हूं तो हू, जो हू वह शाश्वत हू। कोई भी है ऐसा नही है कि जो है और मिट गया। जो मैं हू सो शाश्वत हू। तो जो शाश्वत हू सो ही मैं हू। अनित्य मैं नही।

(९७) **शाश्वत तत्त्वकी सवेदन गम्यता**—शाश्वत तत्त्व क्या है मुझमे? बस वह चिद्रूप, अनुभवगम्य। जिसको अनुभव हुआ है वह ही इस शब्दको सुनकर परिचय पा लेता है। जिसको अनुभव नही हुआ वह इन शब्दोको सुनकर कुछ अगल-बगल ही तकता रहता है। सो यद्यपि इस समय उसको स्पष्ट नही है पर पुरुषार्थ करे तो अनुभव बनेगा और स्पष्ट हो जायगा। जिसने जो चीज कभी नही खाया जैसे मानो अनन्नास कभी नही खाया, अनन्नास एक फल होता है उस अनन्नास फलके स्वादका कितना ही वर्णन किया जाय फिर भी जिसने कभी नही खाया वह कुछ न समझ सकेगा। और जिसने खाया है वह नाम लेते ही तुरन्त जान जायगा। तो कही उस शब्दसे नही जाना, किन्तु ख्याल करके जाना कि इसके बारेमे बात है वह ऐसा स्वाद है। शुरू-शुरूसे ही जिसका आलूका त्याग है और वह किसीसे पूछे कि बताओ आलूका कैसा स्वाद होता है, तो वह बतायगा, बहुत-बहुत बतायगा, फिर भी इसकी समझमे सही सही न आयगा। तो ऐसे ही जिसको अपने आत्मस्वभावका अनुभव बना है उसको उसका नाम लेते ही तुरन्त परिचय हो जाता है। जहाँ कहा एक ज्ञायक स्वभाव,

चित्प्रकाश, चिद्रूप, बस वह समझ जायगा, और जिसने आत्मस्वभावका अनुभव नही किया उसके कुछ समझ न बनेगी, पर ऊपरी समझ है, उसके आन्तरिक समझ नही बनती। तो ऊपरी समझ बनावे वह भी कार्यकारी है उसके बाद आन्तरिक समझ बनेगी, पर साक्षात् समझ तो अनुभवसे प्राप्त हुआ करती है। उस ज्ञानमात्र तत्त्वके अनुभवमे जो अलौकिक सहज आनन्द प्राप्त किया उस आनन्दके अनुभवने उसको दृढ बना दिया। अब उसकी धुन किसी दूसरी जगह नही लगती। अपने आपके ही इस चित्स्वरूपमे उसका मन रमता है। और कोई बात उसे सुहाती ही नही। जिसको जिस कार्यमे लगन लगी उसे वही सुहायेगा, अन्य गप्प न सुहायेगी, ऐसे ही चित्स्वरूपका अनुभव करने वाले ज्ञानियोको ससारका कोई भी अणु नही सुहाता। एक चित्स्वरूप पवित्र, बस यही दृष्टिमे रहे और यही पर्यायमे बने, ऐसी उसकी भावना रहा करती है।

उक्किट्ठीसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुय भारो य।
जो विहरइ सच्छद पाव गच्छदि होदि मिच्छत्त ॥ ९ ॥

(९८) आगमविरुद्ध स्वच्छंद प्रवृत्ति वाले पुरुषकी पापरूपता—सूत्रका यथार्थ ज्ञान करना कितना आवश्यक है कि उसके ज्ञान बिना कोई बहुत उत्कृष्ट सिहवत् अपना आचरण बनाये मायने निर्भय होकर, नि शक होकर खूब तपश्चरण करे और बडे-बडे तपश्चरणो द्वारा शरीरको भी सुखा ले और आचार्य भी बने, सघनायक रहे तो भी यदि स्वच्छद आचरण करता है, सूत्रका ज्ञान नही, चरणानुयोगका सहारा नही वह पापोमे ही प्रवृत्त होगा, मिथ्या-दृष्टि ही हो जायगा। चरणानुयोगके अनुसार चलना श्रावक और मुनिका बडा आवश्यक कर्तव्य है, उसके अनुसार चलते हुएमे आत्मस्वभावका ध्यान करे तो उसका वह पात्र है। और जो आगमसे विमुख है, सूत्रसे अलग हो गया है, चरणानुयोगका प्रवेश ही नही, उसमे यह कला नही जग पाती कि जिस कलासे वह आत्मामे रमण कर सके। चरणानुयोगका बडा उपकार है। चरणानुयोगकी विधिके अनुसार जिसका आचरण हो उसको उस जीवनमे स्वच्छंदता रह सकती है, और जहाँ मनकी स्वच्छदता है वहाँ तत्त्वदृष्टि नही बनती, फिर एक इस तरहसे भी समझे कोई कि कोई यह जानता है कि मुझे तत्त्वका ज्ञान हुआ, अनुभव बना, चरणानुयोगकी बात तो मामूली सी है, तो वह मामूली बात कर क्यो नही पा रहा? अगर ये साधारण बातें हैं, व्रत, नियम, प्रतिज्ञा, सकल्प त्याग सबन्धी जो बात अगर बेकार सी है, छोटी सी है तो वह छोटी बात भी क्यो कडी बन रही है। तो मालूम होता है कि जो आगमके प्रतिकूल चलना चाहता है उसका केवल एक मनका विनोद भर है। पर उस तरह वह तत्त्वदृष्टिका पात्र नही। धर्मका तो बन जाय नेता और निर्भय हो, तपश्चरण करके

बडा कहलाये और अपने नामसे अपना सम्प्रदाय चलाये तो यह जिनागमसे बहिर्भूत है। पहले बहुत बड़े-बडे दिग्गज आचार्य हुए। उन्होने कभी जिनागमसे बाहर प्रवृत्ति नही की। जिनागमकी परम्परासे जो नदीका जैसा प्रवाह चला आया उसीमे काम किया और गुप्त हो गए क्योकि वे जिनागमके अन्तः नियंत्रण मे थे।

(९९) **आगमविरुद्ध प्रलाप, चर्या व वेष रखने वालोंकी संगतिकी भी हेयता**—जिन सूत्रसे च्युत होकर जो स्वच्छद प्रवृत्ति करता है वह पापी है, मिथ्यादृष्टि है, उसका प्रसंग भी श्रेष्ठ नही है। इस सूत्रपाहुडकी टीका हिन्दीमे पडित जयचन्द जी छाबड़ाने की, जो अबसे करीब १०० वर्ष पूर्व हुए होगे। उन्होने यह लिखा है कि धर्मकी नायकी ले करके निर्भय हुआ तपश्चरण आदिकके द्वारा, जिससे जो ढंग बन बैठे उससे बडा कहलाकर जो अपना सम्प्रदाय चलाता है जिनसूत्रसे च्युत होकर स्वेच्छाचारी बनता है वह पापी मिथ्यादृष्टि है। उसका प्रसंग भी उत्तम नही है। आगम श्रद्धा एक बहुत बडा भारी बल है और श्रद्धा वही कहलाती है जो आगमके सभी ग्रन्थोमे उसकी श्रद्धा हो। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, इन सभीमे उसका कौशल हो और मुख्यतया चरणानुयोगके अनुसार आचरण हो। जीवनमें कैसा आचरण होना चाहिए इस आचरणको बाकी अनुयोग तो नहीं बतलाते। थोड़ा संकेत तो करते है तीन अनुयोग कि सदाचारसे रहना चाहिए, मगर वह सदाचार क्या है और किस तरहसे अपना आचरण बने इसका विवरण तो चरणानुयोगमे है। तो चरणानुयोगके अनुसार जो अपने आचरणमे रहता है, चाहे वह पाक्षिक श्रावक जैसा आचरण हो, प्रतिमा सम्बन्धी हो, मुनिसबधी हो। जो जिस पदमे है उस पदमे प्रभु जिनेन्द्र द्वारा बताये गए चरणानुयोगके अनुसार अपनी प्रवृत्ति रखे। अधिक दिखावाकी वृत्ति न हो और उ पद माफिक जो बात कही गई है उससे हीन प्रवृत्ति न हो तो ऐसा जिसका आचरण अभ्यासमे आ गया है उसको आचरणका विकल्प भी नही करना पड़ता और आचरण होता रहता है यथार्थ और वह अपने आपमे इस सहज अविकार चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि बनाये रहता है। सो सूत्रके ज्ञान बिना, आगमकी श्रद्धा बिना, आगममे बतायी हुई विधिके अनुसार चले बिना इस परम अविकार सहज स्वरूपका वह अनुभव नही कर पाता।

णिच्चेलपाणिपत्त उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥

(१००) **बाह्यवृत्तिमे मोक्षके मार्ग व अमार्गका निर्णय**—जिनेन्द्रदेवने केवल एक ही मोक्षमार्ग कहा है। व्यवहारसे कह रहे है, वह कौनसा मार्ग है, जिसपर चलना चाहिए, जिसके अनुसार अपनी जीवनचर्या बनाना चाहिए। वह मार्ग है वस्त्ररहित पाणिपात्र मुद्रास्व-

रूप जो मुनिधर्म है वह तो है एक मोक्षमार्ग । व्यवहार मोक्षमार्गकी बात कह रहे हैं कि किस विधिसे उस ज्ञानीका आचरण रहता है जो मोक्षमार्गमे प्रगतिशील होता है, बाकी सब है अमार्ग। एक इस निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा बिना जितनी अन्य रीतियाँ हैं वे सब अमार्ग हैं। कितने ही लोग कितनी ही वस्तुओका सग्रह रखते है और उन वस्तुओको गुरुपनेका साधन मानते है, अनेक लोग मृगको छालपर बैठते है, पर उनके चित्तमे यह नही आता कि यह मृगकी छाल आखिर चमडी ही तो है, अपवित्र ही तो है, मारकर बनायी गई ही तो है, या मरे हुए मृगसे निकाली गई ही तो है। इसमे निरन्तर जीव उत्पन्न होते हैं। और कदाचित् वह मृगछाल गीली हो जाय तो उसका ग्लानिपन तो स्पष्ट विदित होने लगता है और बजाय इस सही ज्ञानके ऐसी बुद्धि बनती है कि यह बहुत बडी पवित्र चीज है। कितने ही लोग वस्त्र तो नही पहनते हैं, किन्तु वृक्षके पत्ते, बक्कल वगैरहसे अपने गुह्य अंगको ढाके रहते हैं। तो उसमे उनको एक विकल्प तो रहा, भीतरमे विकार तो रहा, जिससे उनको अंग ढकनेकी आवश्यकता पड़ी। बल्कि जो एक साधारण रिवाज है साफी तौलिया आदि पहननेका तो उसमे विकार सम्बधी बात उतनी अधिक नही बनती जितनी कि बक्कल, पत्ते आदिसे गुह्य अंगको ढाकनेपर बनती है। और सहजस्वरूप अविकार तो एक दिगम्बर मुद्राका है। तो किसी भी प्रकारके अन्य वस्त्र रखना, रोमका वस्त्र, टाटका वस्त्र, तृणका वस्त्र बना लें और अपनेको मान लें कि मैं गुरु हू, मोक्षमार्गमे चल रहा हू तो वह उस कालमे जिनागमसे च्युत है। कभी भी हो वह जिनागमसे च्युत है, उसने अपनी इच्छामे अनेक प्रकारके भेष चलाया है, जैसे श्वेत वस्त्र रखकर उसे धर्मका एक अग समझा और अपनेको गुरु माने तो वह जिन आज्ञासे विमुख है। वह यह नही जान पाता कि मेरेमे यह कमजोरी है।

(१०१) मुनिसे पूर्व पदवीमे ज्ञानी श्रावककी सत्यके प्रति आस्थाका दिग्दर्शन— उत्कृष्ट लिंग क्षुल्लक अर्जिकाको जो वस्त्र कहा है तो वे वस्त्र पहिनते तो हैं किन्तु यह वस्त्र पहिनना धर्मका अग है या धर्मका उपकरण है, ऐसा नही मानता, किन्तु अपनी कमजोरी समझता है कि मैं अभी अतरमे पूरा निरपेक्ष नही बन पाया और ये रखना पडता है, पर जो बाहरी चीजोको रखकर उसे उपकरण मान ले तो उसके नियमसे मिथ्यात्व ही है। कोई लाल पीले वस्त्र रखते है, कोई टाटके वस्त्र रखते हैं और अपनेको गुरु मानते हैं, मोक्षमार्ग मानते हैं, सो यह मार्ग नही है। जिनसूत्रमे तो एक निर्ग्रन्थ दिगम्बर पाणिपात्र वाला भेष ही मोक्षमार्ग बताया है, अन्य कोई मोक्षमार्ग नही। मोक्ष मायने क्या है ? केवल रह जाना। जो मैं आत्मा स्वयं एक अकेला परिपूर्ण सत् हू, मात्र वही वही रह जाय, कोई परका सम्पर्क न रहे, बधन न रहे, केवल यह एक स्वतन्त्र निराला बन जाय इसको कहते हैं मोक्ष। तो जो

ऐसा अपने आत्माको निराला होना चाहता है वह तो छोडने-छोडनेका ही कार्य करेगा, पर ग्रहण करनेका कार्य न करेगा। ग्रहण करना पड़े यह उसकी एक परिस्थिति है, पर ग्रहण करके उसे धर्म न समझेगा। त्याग यों करता है कि उसको केवल रहना है, केवलकी दृष्टि है तो कुछ सहज त्याग होता है। कुछ बाधक जान करके उनका त्याग किया जाता है। तो ऐसा जिनशास्त्रमे एक निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा ही मोक्षमोर्ग बताया है, अन्य भेषको मोक्षमार्ग नही कहा।

जो संजमेसु सहिओ आरभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥११॥

(१०२) **ससंयम महात्माकी वन्दनीयता**—पहली गाथामे यह बताया है कि एक यथार्थ दिगम्बर मुद्रा ही मोक्षमार्ग है, तो वह मोक्षमार्ग कैसे है ? क्यो है उसका कुछ वर्णन इस गाथामे है। जो दिगम्बर मुद्राका धारी मुनि इन्द्रिय मनको वश करके अपने आत्मतत्त्व को चिन्तनमे लेता है वहाँ मोक्षमार्ग है। मुक्ति पानेके लिए साक्षात् दृष्टि तो अपने कैवल्य स्वरूपपर चाहिए। पर चूंकि यह जीव इन्द्रियके विषयभूत पदार्थोंमे मनके विषयभूत पदार्थों मे अनादिसे लगा चला आ रहा है तो उनसे निपटनेका अभी एक काम पडा है। उस निपटनेका काम बनानेके लिए व्रत नियम तप आदिक ये सब बाह्य बातें है। करनेका काम तो अतरगमे अविकार चित्स्वरूपमे अहका अनुभव करना है। ये युद्ध करने वालोके हाथमे शस्त्र और ढाल दो चीजें रहती है। अब आजकल इन शस्त्र और ढालोका कुछ रूप बदल गया मगर शस्त्र और ढाल ये दोनो ही आवश्यक हैं। शस्त्र तो शत्रुका सहार करनेके लिए है, ढाल शत्रुका आक्रमण बचानेके लिए है। ऐसे ही ससारतत्त्वका नाश करनेके लिए जो सम्यग्दृष्टिने अन्दरमे सग्राम छेडा है उसके लिए शस्त्र और ढाल ये दोनो आवश्यक हैं। शस्त्र तो है शुद्धस्वरूपकी दृष्टि और ढाल है व्रत, तप, नियम आदिकका पालन, क्योकि ये काम, क्रोध मान, माया, लोभ यह शत्रुका आक्रमण सुगमतया, शीघ्र ही, तुरन्त ही अपनी एक प्रकृति और अभ्यासके अनुसार उनका आक्रमण बचाना चाहे कोई तो शुभोपयोगमे आये। आक्रमण बच जायगा। शुभोपयोग तो है ढाल और शुद्धोपयोग है शस्त्र, और शस्त्रके बिना कोई योद्धा विजय प्राप्त नही कर पाता तो ऐसे ही अथवा उससे भी अधिक आवश्यक है कि शुभोपयोगकी ढालसे तो अशुभोपयोगका आक्रमण बचाया और शुद्धोपयोगके शस्त्रसे इन कर्म शत्रुओ की जड उखाडा। यह ही एक धर्ममे करना होता है।

(१०३) **शुद्धोपयोगके अपात्र व शुद्धोपयोगसे घृणा करने वालोके द्वारा आने वाले संकटका चित्रण**—चूकि शत्रुसहार किया जाता है शुद्धोपयोगसे सो शुद्धोपयोगकी रीति तो

प्राप्त हुई नही, किन्तु एक विचित्र बात प्रसिद्ध करनेके लिए, अपनी ख्याति चाहनेके लिए अथवा कुछ करना न पडे और हम धर्मात्मा कहलायें इसके लिए चर्चा तो शुद्धोपयोगकी हो और शुभोपयोगको अत्यन्त हेय बताकर तीर्थप्रवृत्तिका लोप किया जाय तो यह उसकी एक स्वच्छदता है। आज नये आदमी, नये मनुष्य जो धर्म मार्गमे टिक रहे हैं, जिनको मौका मिलता है कि वे निश्चयकी बात शुद्ध तत्त्वकी नात कभी समझ लें। यदि यह तीर्थपरम्परा ही नष्ट करदी और शुरूसे ही उनको उपदेश किया जो अशुभोपयोगमे बढ रहे हैं कि शुभोपयोग तो बिलकुल हेय है तो उनका बढना कैसे बनेगा ? जैसे किसीको बम्बई जाना है तो बीच के सभी स्टेशनोको पार करके बम्बई पहुंचेंगे। अब कोई कहे कि बम्बई जाना है तो बीचके स्टेशनोंसे गुजरना बुरा है तो फिर मत गुजरो। उससे उसे बम्बई न मिलेगी। तो ऐसे ही मोक्षमार्गमे जो प्रगतिसे गमन करते हैं वे शुभोपयोग द्वारा आक्रमणका वार बचाकर शुद्धोपयोगके प्रयोगसे भावकर्म शत्रुका विनाश करते हैं। द्रव्यकर्म स्वयं नष्ट होते हैं।

(१०४) **इन्द्रिय व मनको वश करके आरभ व परिग्रहका त्याग करने वालोकी बन्दनीयता**—मुनिजन इन्द्रिय मनको वश करके अपने आपके चिन्तनमे बढा करते हैं। ६ काय के जीवोकी दयारूप सयमसे सहित होकर ये आरम्भ परिग्रहसे दूर होते हैं। आरम्भ और परिग्रहसे दूर हुए बिना इस ज्ञानमात्र आत्मामे रमण न बन सकेगा। तो जो आरम्भ और परिग्रहका त्याग करेगा उसने जीवदया तो धारण कर ही ली, क्योकि आरम्भ और परिग्रहके रहते हुए जीवदया पूर्ण नही निभ सकती। तो पूर्ण जीवदयाका निभाव तो निष्परिग्रह निरारम्भ पुरुषके हो पाता है तो जो मुक्तिमार्गमे चलना चाह रहा है वह असंयममे प्रवृत्ति नही करता, ब्रह्मचर्यमे स्थिर रहता है, ऐसा पुरुष सुर-असुर द्वारा भी बदनीक है। बुद्धिमान पुरुषो द्वारा भी बदनीक है। वह तो है जिनमार्ग और इसके अलावा जो एक बाहरी भेष है, परिग्रह वाला है, आरम्भ वाला है वह भेष बदनाके योग्य नही है।

(१५०) **व्यवहारविनयमे भी ज्ञानी द्वारा रत्नत्रयकी वन्दना**—बदना किसकी की जानी चाहिए ? दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी। धर्मात्माका जो बदन करता है सो यह स्मरण करता है कि इन्होने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रको आदर दिया है, ये इन्हे अपनी शक्तिके अनुसार पाल रहे हैं। यह सब बात जिसकी श्रद्धामे है। वही तो उसका बदन करता है। तो बदन करनेमे दृष्टि रत्नत्रयकी ओर ही हुआ करती है। जैसे जिस जिन प्रतिमामे अरहत देवकी स्थापना की है उसको बदन करते समय अरहतदेवका ही स्मरण रहता है और उस स्मरणके साथ जिनबिम्बको पूजता है तो ऐसे ही जो गुरुजनोकी बदनाकी जाती है सो सामने दृष्य तो शरीर है, पर शरीरका बदन नही है, किन्तु शरीरमे रहने वाला आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,

सम्यक्चारित्रका आदर रखता है और उसका पालन करता है, यह उसके स्मरणमे है तो उस ने बंदना की है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी। भाव वदनीय है और भाव ही ससारमे भ्रमाने वाला है। भाव ही मोक्षमे पहुचाने वाला है। तो जिसको अपने आपमे उन्नति मे ले जानेकी भावना है उसे अपने भावोमे सुधार करना है। भाव निरपेक्षताका रहे। हिंसा, झूठ, चोरी आदिक पापोसे दूर रहे, ईर्ष्या आदिक दुर्भावनाओसे दूर रहे, अपने आपमे अपने अविकार चैतन्यस्वरूपकी दृष्टिकी उमग रहे, यह ही सार है। यह ही लोकोत्तम है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी मेरा कार्य नही है, ऐसी दृढ भावनाके साथ अपने आत्माकी ओर अभिमुख रहे, ऐसी वृत्ति करने वाला आत्मा वह गुरु है। जिससे हम सीख लें वह गुरु, जिस की मुद्रासे सीख, जिसकी वृत्तिसे सीख, जिसके ज्ञानसे सीख, जिसकी क्रियासे सीख। सीखसे क्या मिला ? उस रत्नत्रयका अनुमान हो गया तो वहाँ रत्नत्रयकी बदना है, और प्रतिबिम्ब के समक्ष उस रत्नत्रयका फल पाये हुए विशुद्ध निर्विकार वीतराग सर्वज्ञ परमात्मतत्त्वकी बदना है। जो अपनेको केवल होना चाहता है वह केवलकी ही आराधना करे। यह ही बात निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुवोके होती है। वही एक रास्ता है। अन्य जो भेष बनाये जाते है वे मुक्तिके रास्ता नही हैं।

> जे बावीस परीसह सहति सत्तीसएहिं सजुत्ता।
> ते होंदि वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू ॥ १२ ॥

(१०६) **परीषहविजयी साधुवोंकी वन्दनीयता**—जो मुनि अपनी पूरी शक्ति सहित शत शक्तियोसे युक्त होकर २२ परीषहोको सहते हैं वे साधु वंदनाके योग्य है, वे कर्मक्षयकी निर्जरामे प्रवीण है। कर्मका क्षय होता है सहज अविकार ज्ञानस्वरूप अतस्तत्त्वमे उपयोगको लीन करनेसे। अब इस प्रकारकी अतर्वृत्ति जो मुनि कर रहा हो उसके बाहरमे अनेक उपसर्ग आते है, उन उपसर्गोंमे चिगे नही और उनपर विजय प्राप्त करे तो वह अपने कर्मक्षयके कार्य मे सफल होता है। तो यहाँ यह जानना कि जो ऊपर शरीरपर बीत रही है, जो उपद्रव आ रहे है उन उपद्रवोको सहने मात्रसे मोक्षमार्गमे नही बढ़े वे, किन्तु उपसर्ग सहे बिना, समता धारण किए बिना अपनी अतर्दृष्टिमे सफल नही हो सकते थे, इसलिए परीषह विजयको कर्म-निर्जराका कारण कहा। प्रयोजन यहाँ यह है कि कितने भी उपद्रव आयें उन उपद्रवोसे विचलित न होकर अपने स्वरूपमे मग्न होना यह मुनिका प्रवर्तन रहता है।

(१०७) **मुनिके क्षुधा तृषापरीषहका विजय**—परीषह २२ कहे गए है। (१) क्षुधा परीषह—बहुत तप करनेके कारण, अनशनके कारण, कोई व्याधि आदिकके कारण क्षुधाकी तीव्र वेदना हुई तो भी अपने अत स्वरूपका ग्रहण करके सतुष्ट रहे, इस वृत्तिको क्षुधा परीषह

जय कहते हैं। (२) तृषापरीषह—ग्रीष्म ऋतुके कारण, अनेक उपवासोके कारण उसमे साधारण व्याधिके कारण तृषाकी वेदना हो गई हो, तो उसे समतासे सहकर अपने शुद्ध ज्ञानामृत का पान करके तृप्त रहना यह तृषा परीषह विजय है। क्षुधा और तृषामे तीव्र वेदना तृषाकी होती है और यह बताया गया कि वेदनाके चार प्रकार होते हैं—तीव्रतम, तीव्र और मद, मदतम। अधिक तेज, तेज, हल्का, बहुत हल्का। इन चार वेदनाओमे से क्षुधाकी दो वेदनायें हैं—तेज और हल्का। पर प्यासमे ये दो तरहकी वेदनायें तो हैं ही, पर बहुत तेज और बहुत हल्का ये दो प्रकारकी भी वेदनायें हैं। हल्की प्यास, विशेष प्यास, तेज प्यास, बहुत तेज प्यास। तो क्षुधासे तृषाकी वेदना अधिक है, पर वेदना मुनिके लिए कुछ नही है। जिसने शरीरको अपनेसे अत्यन्त पृथक् निरख लिया और शरीरसे निराला सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव कर लिया वह शारीरिक वेदनासे विचलित नही होता। सब भीतरी साहसकी बात है। जैसे सम्मेद शिखर जी के पहाडपर बहुतसे बुड्ढा बुड्ढी पैरोंसे भी लगडे अपने आत्मबलके कारण पूरी वदना करके आ जाते हैं और कितने ही नवयुवक शरीरसे हट्टे कट्टे थोडा ही चलकर साहस छोड देते हैं, पहाडकी ऊँचाई देखते हैं तो वे लौट आते हैं। यह साहसका ही तो फर्क है। जिसने पूरी ठान ली कि शरीरसे मेरा कुछ सम्बध नही, प्रयोजन नही, मैं तो ज्ञानमात्र हू, अपने स्वरूपको ही निरखूगा, ऐसी पक्की ठान लेने वाले पुरुषको शारीरिक वेदना विचलित नही करती। यह सब मोह रागद्वेषके होने और न होनेका अंतर है। मोही पुरुष तो शरीरकी तो बात क्या, बाह्य पदार्थोंको टूटा-फूटा देखकर जिससे इनको ममता है, ऐसे दु खी होते हैं जैसे मानो उनपर बुखार ही चढ गया हो, कोई भीत गिर गई, कोई कुटुम्बमे किसीको वेदना हो गई या कही नुक्सान हो गया तो वह ऐसा अनुभव करता कि जैसे मानो तेज बुखार ही चढ गया हो, ये सब मोहके प्रभाव हैं। जिसने अपने आत्मसत्त्वको शरीरसे निराला निरख लिया उसको शारीरिक वेदना कैसे विचलित कर सकती।

(१०८) मुनिके शीत उष्ण व दशमशक परीषहका विजय—(३) शीत परीषह—ठडके दिनोमे ध्यान कर रहे हैं, जगलमे रहा करते हैं, कोई ठंड बचानेका साधन नही रखते, फिर भी अपने ध्यानमे रहा करते हैं। जिसने अपने आत्मामे ध्यान बनानेका ही एक जीवन का सर्वस्व सार समझा उसको मरणका भी भय नही होता। उसकी दृष्टिमे है कि मैं आत्मा अमर हू मैं इस अमर आत्माको ही निरखता रहू और इस अतस्तत्त्वको निरखनेके साथ इस देहसे विदा हो गया तो मेरा बिगाड कुछ नही है, क्योकि शरण सार तो आत्मतत्त्वमे निवास है, सो वह मेरा बन रहा, ऐसा निर्णय रखने वाले पुरुषको शीत आदिक परीषह नही होते, उनसे विचलित नही होते। (४) उष्ण परीषह—गर्मीके दिन हैं, तेज लपट चल रही है,

पर्वत या मैदानमे कही बैठे हैं, वह साधारण जनोके लिए बडी तीव्र वेदना है, पर जो अपने ज्ञानामृत सरोवरमे मग्न हो रहे है, निरन्तर उपयोग जिनका इस शुद्ध ज्ञानमात्र स्वभावमें लग रहा है उनको तो ख्याल भी नही आता कि कौनसा काल है, कहाँ बैठे हैं ? तो ऐसे भीषण गर्मीके प्रकोपके उपद्रवको भी समतासे सह लेवे और अपने अंतः इस ज्ञानसरोवरमे उपयोगको मग्न करें यह है उष्ण परीषह विजय । (५) दशमसक परीषह—कहनेको तो छोटा डांस मच्छर है, मगर वह काटे तो उसकी क्या वेदना होती है ? साधारण जन जरा भी नही सह सकते और उस वेदनासे पीडित होकर वे मच्छरको भगानेका भी ख्याल नही रखते, किन्तु मच्छरपर ऐसा हाथ मारते कि उसके प्राण भी चले जायें । तो डांस मच्छर काटे उस समय भी मुनि अपने इस अमूर्त ज्ञानस्वरूपका चिन्तन करते हुए विचलित नही होते यह उनका दंशमसक परीषह विजय है । उनकी भावना रहती है कि मैं आत्मा अमूर्त हू इसमें रूप, रस, गध, स्पर्श नही । आकाशद्रव्यके समान अमूर्त है, इसमे किसी वस्तुका प्रवेश हो नही, शरीर पुद्गल है, इसमे ही मच्छरका भिडाव है, इतने सम्बोधनकी बात मुनिके बनी रहती है कि जिसके कारण दशमसककी वेदनासे विचलित नही होता ।

(१०९) मुनिके नाग्न्य व अरति परीषहका विजय—(६) नाग्न्यपरीषह विकार-रहित हुए विना नग्न होना कठिन है । कोई जबरदस्ती ही पूजा प्रतिष्ठाके लोभसे नग्न हो जाय तो वह वास्तविक नग्नता नही है । नग्नता वह है कि वाहर भी नग्न है और भीतर भी नग्न है । नग्न नाम है उसका कि दूसरा पदार्थ संबधमे न रहे, शरीर अकेला ही रहे, उस पर वस्त्रादिक नही है उसे कहते हैं नग्न । तो भीतरमे नग्न क्या कहलाता कि जिसके उप-योगमे केवल आत्मस्वरूप है, विकारका लगाव नही, विकार वस्त्र नही पहिचानता है, सो आत्मस्थिति होना यह है भीतरी नग्नता । तो नग्न होकर लज्जा या ग्लानि या भीतरी विषाद या सकोच आदिक किसी भी प्रकारकी कषाय नही रहती, जिससे कि नि शक वह अपने स्व-रूपके ध्यानमे मग्न रह सके, ऐसी समताको नग्नपरीषह जय कहते है । (७) अरतिपरीषह जय—प्रतिकूल पदार्थका संयोग हो जाय, मुनिको इष्ट नही, ऐसी बात भी आ जाय तो वहाँ भी अरति न करना । द्वेष ग्लानि न करना, उस स्थितिका भी ज्ञाता द्रष्टा रहना और यही निर्णय पुष्ट रखना कि अनिष्ट समागम क्या ? बाहरी पदार्थ है, उनका परिणमन है, उनसे मेरेमे कोई बिगाड नही है, ऐसे प्रतिबोधसे अपने आपमे समता बनाये रखना अरतिपरीषह विजय है ।

(११०) मुनिके स्त्री व चर्या परीषहका विजय—(८) स्त्रीपरीषहविजय—कोई स्त्री या देवी अपने मनोज्ञ रूपको देखकर हाव भाव दर्शाकर इसको डिगाना चाहे तो यह न

चिगे और यह जाने कि जिसको विकारभाव होता है वह क्षणिक भाव है, वह अपनेको सम्हाल नही पाता और विकारभावमे लग जाता है। तो यह ही संसारमें जन्ममरणकी परंपरा वनाये रहनेका साधन है। मुझे जन्म मरण न चाहिए। मेरा स्वभाव तो ज्ञायकभाव है। है और अतः झलझलाता रहे, प्रतिभास स्वरूप रहे, इसमे विकारकी गुंजाइस नही, विकार तो उदय मे आये कर्मरसका फोटो है, उसमे मेरा नेह नही। मैं तो अपने सहज स्वरूपमे ही मग्न रहूगा, ऐसी दृढ प्रतिज्ञाके साथ जो अतः ध्यान करते हैं और स्त्रीकृत उपद्रवसे चिगते नही हैं उनके है यह स्त्रीपरीषह विजय। (९) चर्यापरीषह विजय—गमन करते हुएमे नुकीले कंकड, कांटे भी छिदते जायें फिर भी चित्तमे ग्लानि न रखे और उससे अपने आपकी शुद्धतासे न चिगे, ऐसे निर्मल परिणामकी ओर ही रहना इसे कहते हैं चर्यापरीषहविजय। (१०) निषिद्य परीषहविजय—निषिद्या कहते है वैठनेको। एक ही आसनसे निश्चल वैठे हुए आत्माके ध्यान मे मग्न होना, शरीरको चलायमान न करना, ध्यानको अविचल बनाना यह है निषिद्यापरीषह विजय।

(१११) मुनिके शय्या व आक्रोश परीषहका विजय—

(११) शय्या परीषह विजय—साधु जन पलग, खाट, कोमल शय्या आदिक पर शयन नही करते। भूमि, काष्ठ शिला आदिक पर शयन किया करते हैं, और एक ही करवटसे शयन करते है। उनको इतनी सावधानी है कि दूसरी करवट लेनेकी आवश्यकता समझा तो पिछीसे अपने शरीरको पोछकर और उस जमीनको पोछकर निर्जन्तु स्थान बना कर करवट लिया करते है प्रथम तो दूसरी करवट लेनेकी उन्हें आवश्यकता ही नही, पर कोई शारीरिक रोग आदिक कोई बात ही आ जाय और करवट लेना ही पडे तो पिछीसे शरीरको झाडकर उस पृथ्वी स्थानको झाडकर करवट लेते हैं, इतना शरीरकी सावधानी है। तो एक ही करवटसे थोडे समय पृथ्वी पर शयन करना और उस ही स्थितिमे अपने अतस्तत्वकी ओर उपयोग लगाकर सतुष्ट रहना यह है शय्यापरीषह विजय। (१२) आक्रोश परीषहजय—आक्रोश कहते हैं गालीको। किसी दुष्ट पुरुषने गाली दी तो उस गालीको सुनकर रच भी खेद न करना और जानना कि गाली क्या है? इस पुरुषके ऐसा ही भाव उपजा है, कषाय उपजी है कि उससे प्रेरित होकर शरीरके मुख आदिक चल उठे और उन्हे सुनकर उपयोगसे भाषावर्गणायें शब्दरूप परिणमी है, तो ये सब बाह्य परिणमन हैं, इनसे मेरेको क्या सम्बन्ध है। मेरेको कुछ नही कहा गया, मेरेमे कोई बाधा नही आयी। मैं तो निर्बाध अमूर्त ज्ञानघन हू। ऐसा अपने स्वरूपको देखता हुआ मुनि दूसरेके द्वारा दी गई गालीसे विचलित नही होता और अपने ध्यानमे अग्रसर रहता है। ऐसे प्रवर्तनको कहते हैं आक्रोश

परीषह विजय ।

(११२) **मुनिके बध व याचना व अलाभ परीषहका विजय**— (१३) बधपरीषह जय । कोई दुष्ट पुरुष गाली देकर भी सतुष्ट नही होता तो वह लाठी या अन्य किसी शस्त्रसे प्रहार करता है उस समय भी यह मुनि अपने आत्माको शरीरसे पृथक् सत्ता वाला निरखकर और अपने ही इस ज्ञानस्वरूपमें उपयोगको लगानेकी ठानकर अन्दर ही रमकर प्रसन्न रहता है, ऐसी स्थितिको कहते हैं बधपरीषह जय । सुकुमालको गीदडोने खाया, सुकौशलको शेरने खाया, किसी मुनिकी चमडीको चाकूसे उतारा, किसी मुनिको कडेमे बेडकर अग्नि लगा दी । बडे कठिन-कठिन उपद्रव उपसर्ग भी आये, पर धन्य है उनका ज्ञान, उनकी लगन कि शरीर को एकदम बाह्य पृथ्वीवत् जानकर उससे विरक्त हुए अपने ही स्वरूपमे मग्न रहते हैं । ऐसा उपसर्ग सहने वाले अनेको मुनियोने अपनी अंत· तृप्तिके बलसे मुक्ति भी पायी । तो ससारके जन्ममरणसे छूटनेका एक इतना बड़ा महत्त्व जानते है मुनि कि उसके उपायमे आत्मध्यानसे कभी विचलित नही होते । (१४) याचना परीषहजय— बडी भूख लगी हो, प्यास लगी हो रोग लगा हो फिर भी अपने आरामके लिए किसी वस्तुकी याचना न करना और हर स्थिति मे कर्मविपाकरसका खेल जानकर और उससे पृथक् अपने अमूर्त ज्ञानानन्द स्वरूपको निहार कर प्रसन्न रहना, यह है याचनापरीषह विजय । (१५) अलाभ परीषहविजय— बहुत दिनोके उपवाससे भी है और चर्या कर गए । विधि न मिली, लाभ न हुआ तो उस अलाभमे भी लाभके समान समझकर प्रसन्न रहना और अपने ज्ञानस्वरूपकी धुनमे आना यह है अलाभ परीषह विजय । यह सब हो कैसे जाता यह बात उनकी समझमे नही आ सकती जिनको अविकार सहज निज ज्ञानस्वरूपमे रमनेकी धुन नही बन पायी । जिनके आत्मस्वरूपमे रमण करनेकी धुन बनी है उनके लिए सब सुगम है । कुछ बात ही नही है । अपना काम करना यह उनका प्रधान लक्ष्य है । अपने कामके मायने आत्मस्वरूपके विकासका कार्य । याने अंत-स्तत्त्वको निरखते रहना इस धुनके कारण ये सब परीषह उनके लिए कुछ भी कष्ट रूप नही है ।

(११३) **मुनिके रोगपरीषहका विजय**—(१६) रोगपरीषह—कोई कठिन रोग हो जाय फिर भी उसके चिकित्साकी वाञ्छा नही, उसमे घबडानेकी वृत्ति नही, किन्तु वही ध्यान जो चलता आया था उसीमे आत्माका उपयोग बना हुआ है यह है रोगपरीषहविजय । सनत कुमार चक्रवर्ती कामदेव माने गए, उनका बहुत ही सुन्दर रूप था, जिनको देखनेके लिए देवता तक भी तरसते थे, आते थे, वे मुनि हो गए और कोई पूर्वकृत पापकर्मका उदय आया, असाता वेदनीयका रस चढ़ा, उनके शरीरमे कुष्ट रोग हो गया । अब तुलना करो—कहाँ तो

वह सुन्दर रूप और कहाँ कुष्टकी वेदना, विडरूप हो जाना, पर उस समय वह सनत कुमार मुनि अपने आत्मध्यानमे सावधान ही थे। शरीर तो गलेगा, जलेगा, छूटेगा, उसका क्या लगाव रखना ? बडे विरक्त थे, इस बातकी भी महिमा स्वर्गमे फैली। जैसे पहले सुन्दर रूप की चर्चा स्वर्गमे फैली थी वैसे ही अब उनके वैराग्यकी चर्चा स्वर्गमे फैल गई। एक देवके मनमे आया कि मैं देखूं तो सही कि कैसा विरक्त हैं सनत कुमार, सो एक वैद्यका रूप रखकर झोलेमे अनेक प्रकारकी दवायें रखकर जहाँ सनत कुमार चक्रवर्ती मुनि ध्यान कर रहे थे, उनके सामनेकी गलियोसे चल-फिरकर जोर जोरसे कहते जायें कि लो दवा खरीदो दवा, हमारे पास सब प्रकारकी अचूक दवायें है। क्या कुष्ट रोग, क्या राज रोग, क्या जलोदर रोग, सभी प्रकारके मर्जोकी शर्तिया दवायें हैं, लो दवा खरीदो दवा। इस प्रकारकी वृत्ति देखकर सनत कुमार मुनि सब समझ गए कि यह व्यक्ति मेरेको सकेत करके इस प्रकारसे कह रहा है, सो अपने पास बुलाया और पूछा कि भाई तुम्हारे पास कौन-कौनसी औषधियां हैं ? तो वह कहने लगा कि कुष्टकी है, राज रोगकी है, अमुक रोगकी है, बोलो तुम्हे कौनसी दवा चाहिए ? तो सनत कुमार बोले कि मैं जिस रोगकी औषधि चाहता हू उसे आप न दे सकोगे। वहाँ उस देवको कुछ कल्पना ही न थी कि यह क्या कहेगा, सो वह बोला—हाँ हां हम दे सकेंगे, बोलो तो सही तुम्हे किस रोगकी दवा चाहिए ? तो सनत कुमार मुनि बोले—देखो मेरेको जन्म मरणका एक बडा भयकर रोग लगा है, वह लगा है अनादिकालसे, यदि उस जन्म मरणका रोग मेटनेकी कोई अचूक दवा हो तो वह आप दे दीजिए। तो वहाँ वह देव सनत कुमारके चरणोमे लोटकर बोला—महाराज, मुझे आप माफ करें। जन्म मरणके रोग की दवा देनेमे मैं समर्थ नही। आखिर वह उस बनावटी भेषको छोडकर अपने सही रूपमे आ गया और कहने लगा—महाराज धन्य है आपका वैराग्य। आपके वैराग्यकी जो चर्चा मैंने स्वर्गोमे सुनी थी वह शत प्रतिशत सही थी। तो भयानक रोग आनेपर भी उस रोगकी वेदनासे विचलित न होना और अपने आपके रोगरहित, विकाररहित शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि रखना यह है रोगपरीषह विजय।

इस गाथामे कहा जा रहा है कि जो अपनी शक्तिके अनुसार २२ परीषहोको सहते हैं, समता धारण करते हैं वे मुनि कर्मोंके क्षय और निर्जरामे प्रवीण होते हैं, क्योकि इच्छा निरोधको ही निर्जरा बताया गया है। कर्मबधका कारण है इच्छा और तपमे इच्छानिरोधकी ही मुख्यता है जिसकी वजहसे परीषह न सह सके वह तो बंधका साधन है और देहसे अपने को निराला जानकर अपने स्वरूपमे रमना यह इच्छानिरोधका रूप है इससे निर्जरा होती है।

(११४) मुनिके तृणस्पर्श, मल व सत्कारपुरस्कार परीषहका विजय—(१७) तृण

स्पर्शपरीषहजय—मुनिराज तृणस्पर्शपरीषहके विजयी होते हैं, तृणका पैरोमे चुभ जाना, कांटे लग जाना, चले जा रहे है देख भालकर जा रहे हैं फिर भी कोई कांटा लग गया पैरोमे तो उससे ऐसा ग्लान नही हो जाता कि परिणामोसे विकार आये और अपने स्वरूपके ध्यानसे बिल्कुल चिग जाय। उस समय भी अपने स्वरूपमे रमना ऐसा तृणस्पर्श परीषह विजय है। (१८) मलपरीषहजय—शरीरमे मल आ गया, वे स्नान करते नही, कितना ही मल लगा हो तो भी उससे मनमे ग्लान न होना, दुःखी न होना यह है मलपरीषहविजय। जब शरीर ही पृथक् दिख रहा है मुनियोको और केवल एक अपने आत्मसत्त्वसे ही अनुराग है तो वे मल निरखकर, देहका मैल देखकर वे दुःखी क्यो होगे ? वे तो ज्ञाता ही रहते हैं। (१९) सत्कार पुरस्कार परीषह विजय—कोई लोग सत्कार न करें तो भी उसका कोई असर नही होता मुनियोको अथवा सत्कार करें तो उसका भी असर नही होता। लौकिक प्रशसा सुनकर उन्हे सतोष नही होता, किन्तु अपने आपके स्वरूपमे रमकर ही उन्हे सतोष होता है। निन्दा करे कोई तो वे जानते है कि यह बेचारा अज्ञानी है। इसका स्वरूप तो है प्रभुतुल्य, मगर कर्मो का ऐसा आवरण छाया है कि यह जीव अज्ञानी होकर कषायवृत्तिमे चैन मानता है। कषाय-वृत्तिसे प्रेरित होकर जिसमे शान्ति जँची वैसी अपनी प्रवृत्ति कर रहा है, मेरेको कुछ नही कह रहा, शरीरको भी कुछ नही कह रहा, किंतु उसके कषायकी वेदना हुई तो अपनी कषाय की वेदनाको वह शान्त कर रहा है। फिर मैं आत्मा तो अमूर्त हू, किसी दूसरेके द्वारा पहि-चानमे न आ सके, ऐसा ज्ञानज्योतिर्मय हू, इसका तो इस निन्दा करने वालेको परिचय ही नही है। यदि परिचय होता तो यह गुणानुराग ही करता, क्योकि आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वरूप और उसका वह परिचय कर लेवे तो उसमे ही उसका अनुराग जचता है। तो अज्ञानी जनो द्वारा गाली दिए जानेपर, निन्दा किए जानेपर, सत्कार न किए जानेपर उन्हे क्षोभ नही होता और वे अपने स्वरूपमे रमनेके पौरुषमे बढते ही रहते हैं। यह है उनका सत्कार पुरस्कार परीषहविजय।

(११५) **मुनिके प्रज्ञा, अज्ञान व अदर्शनपरीषहका विजय**—(२०) प्रज्ञापरीषहजय—तपश्चरण साधनाके बलसे कोई विद्या सिद्ध हो जाय, ज्ञान बढ़ जाय, अवधिज्ञानादिक हो जायें तो उसका उन्हे घमंड नही होता। वे यथार्थ तत्त्वको जानते है कि आत्माकी परम ऋद्धि तो केवलज्ञान है। जिससे कि तीन लोक और अलोकके समस्त पदार्थ ज्ञानमे आया करते है। और ये जो कुछ थोड़े ज्ञानातिशय हुए है ये तो कुछ भी चीज नही है, उन्हे इस बातका घमड नही होता, और कितनी ही ऋद्धि सिद्धि हो जानेपर भी अपने आपके स्वरूपमे उपयोग लगाये रहनेका पौरुष बनाये रहते है। उस ओर तो दृष्टि भी नही जाती, यह है उनका प्रज्ञापरीषह

विजय। (२१) अज्ञानपरीषहविजय—बहुत तपश्चरण साधना करनेपर भी यदि अवधि ज्ञानादिक कोई अतिशय नही पैदा होते तो उन्हे खेद नही होता, क्योकि वे जानते हैं कि बडो अतिशय ऋद्धियाँ नही मिली तो क्या हुआ, यह तो एक आशिक वात है, और आत्माका स्वभाव तो अनन्त चतुष्टयका है। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्द, ऐसा महान स्वरूप है, और कुछ ज्ञान हो जाना, कुछ ऋद्धियाँ हो जाना, ये तो सब छोटी ही बातें है, उनके न होनेका मुनिजन कष्ट नही मानते। ऐसे सिद्ध भगवान बहुत हैं जिनको मुनि अवस्थामे श्रुतज्ञान भी पूरा न था, श्रुत केवली भी न बन सके थे, और तपश्चरण करके मोक्ष हुआ, परमात्म स्वरूप प्रकट हुआ, तो केवलज्ञान द्वारा समस्त लोकालोकको निहारने लगे। तो साधुवोको अपने आपमे कोई अतिशय न प्रकट हो तो उनको कोई खेद नही होता। (२२) अदर्शन परीषह—कोई बात प्रकट न होनेपर ऋद्धियाँ न होनेपर ऐसी कुदृष्टि नही बनती मुनियोके कि मैंने इतने वर्ष तक ऐसी साधना की और मेरेको कोई अतिशय ही नही बन पाया तो कही यह मार्ग झूठा तो नही है, मैं कही गलत रास्तेपर तो नहीं हूँ, ऐसी उनको शका नही होती। उनको यह अटल श्रद्धान है कि मेरे इस आत्माका कल्याण है तो आत्मस्वरूपमे निस्तरग रम जानेमे ही कल्याण है। इस प्रकार ये मुनीश्वर २२ परीषहोपर विजय करते है और कर्मोंकी निर्जरा होती रहती है।

अवसेसा जे लिगी दसरणणारोणसम्म सजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छरिगज्जाय ॥१३॥

(११६) उत्कृष्ट श्रावककी वाञ्छनीयता—जैनशासनमे निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिलिङ्गको मोक्षमार्ग बताया है। मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही है, मगर दुनियाके लोग कैसे समझें कि इस तरह चलने से यह मुक्तिमे बढता है। तो उसका जो बाह्यरूप है वह है निर्ग्रन्थ दिगम्बर भेष। उसको मोक्षमार्ग ही कहा याने लोकव्यवहारमे जल्दी समझमे आये लोगोको और रत्नत्रयके धारियोकी वह चर्चा भी है इस कारण उसे व्यवहारमे मोक्षमार्ग कहते है। तो उस निर्ग्रन्थ दिगम्बर लिङ्गके अतिरिक्त अन्य जो लिङ्ग है उत्कृष्ट श्रावकका जो दर्शन ज्ञानसे भले प्रकार सयुक्त है, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी उत्कृष्ट श्रावक वस्त्रसे भी सहित है तो भी वह वाछनीय है, इष्ट है तो वह भी भक्तिके योग्य है, क्योकि मार्ग तो वही है। दृष्टि लक्ष्य भी वही है। उत्कृष्ट श्रावकका उनका एक भेष है। जैसे कि बाह्य परिग्रह कुछ भी आत्माके लिए हितकारी नही हैं ऐसा जानकर समस्त परिग्रहोका त्याग करके निर्ग्रन्थ साधुपना होता है तो उत्कृष्ट श्रावकके भी ये बाह्य वस्तु हितकारी नही हैं, ऐसा जानकर उनका त्याग क्या करना है? त्याग करते करते केवल एक अल्प बात रह

गई। एक दो वस्त्रका धारण करना मात्र जिनके रह गया है ऐसे उत्कृष्ट श्रावक भी वांछनीय हैं। अपने आपको इष्ट है। यहां इच्छाका अर्थ योग्य कहा, उसका अर्थ वाञ्छनीय है, इष्ट है, यह अर्थ समझना। वहां रूढिमें इच्छाका शब्द ही बोल देते है। इच्छामि कहा करते हैं, पर इच्छामिका अर्थ क्या है? मैं इसको चाहता हूं मायने वह उत्कृष्ट श्रावकके भेषको चाहता है, इससे आगे कुछ नही चाहता। वह मुनिपना नही चाहता, क्या यह अर्थ है? नही। यह अर्थ है कि मैं रत्नत्रयको चाहता हू। तो रत्नत्रयकी पूर्णता जहां हो उन साधुवों को निरखकर कहना चाहिए कि इच्छामि याने मैं रत्नत्रयको चाहता हू। इच्छाके योग्य है, इसका अर्थ है कि वह भी वदनीय है। वह भी इष्ट है। वह भी हमारी भक्तिके योग्य है।

(११७) वन्द्य गुरु जनोंके प्रति विनयव्यवहार पद्धति—जो व्यवहारमे विनयकी पद्धति है वह तो इस प्रकार है जैसे कि बताया है—"नमोस्तु गुरवे कुर्याद्वन्दना ब्रह्मचारिणाम्। इच्छाकारं सधर्मिभ्यो वदामीत्यार्यिकादिषु।" गुरु निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुवोको तो 'नमोस्तु' शब्द बोलना चाहिए। ब्रह्मचारी वर्गको सप्तम प्रतिमाधारीके श्रावकको 'वदनामि' शब्द बोलना चाहिए और जो साधर्मीजन हैं अर्थात् सप्तम प्रतिमाके नीचेके पुरुष साधर्मीजन है बताये गए हैं। अव्रती हो या दो एक प्रतिमाके धारी हों उनको इच्छाकार कहना चाहिए। तो इच्छाकारका अर्थ सुनो—इच्छाकार शब्द ही बोलना, यह नही, किन्तु तुम्हे जो इष्ट शब्द हो, जो शब्द बोलनेकी तुम्हारी इच्छा हो वह बोलना चाहिए जैसे जय जिनेन्द्र, जय जिनेश, जुहारू या जय वीर···, किसी भी प्रकार प्रभुस्मरण होना चाहिए, और अर्जिका आदिकको वदनामि शब्द बोलना चाहिए। यहाँ आदि शब्द दिया है और सप्तमीका बहु वचन शब्द कहा है। आदि शब्द कहकर यदि एक वचन कहे तो वह बहु ग्रहणमे आता। यहाँ बहुवचन लगाया तो निश्चित हो गया कि कमसे कम तीनको लिया। वे तीन कौन है? अर्जिका, क्षुल्लक और ऐलक, ये तीन लिङ्ग है। उत्कृष्ट श्रावकके या उत्कृष्ट श्रावक शब्दसे ही कह लीजिए। अर्जिका भी उत्कृष्ट श्रावक है और क्षुल्लक ऐलक भी उत्कृष्ट श्रावक हैं, उनको वदनामि बोला जाता है।

(११८) उत्कृष्ट श्रावकोंकी आत्मतत्त्वाभीप्सा व उपासकोंके लिये अभीष्टरूपता—यहाँ जो कहा है कि उत्कृष्ट श्रावक इच्छाकारके योग्य हैं इसमे विशेष रहस्य है याने उत्कृष्ट श्रावक आज भी बहुधा मिल जाते हैं, वास्तविक मुनि होना, उनका सग मिलना तो बहुत दुर्लभ है। जिनको रत्नत्रयसे ही प्रीति हो, बाह्य क्रियाकाण्डोको कालानुसार करनेपर भी उनमे स्वरूपवत् प्रीति न हो, बाह्य आवश्यक कर्म किए तो जाते हैं मुनि अवस्थामे मगर उनसे उपेक्षा रहती है मायने ये ही मेरे स्वरूप हैं यह दृष्टि नही है, पर जैसे कहते हैं ना कि अब

क्या करें, यदि ऐसी स्थिति है तो उसे अपने षट्कर्म करने होते हैं, ऐसे ही मुनि चूंकि अब क्या करें, शुद्धोपयोगमे नही रम रहे है तो वे भी अपने ६ आवश्यकोको करते हैं, पर दृष्टि रहती है मात्र शुद्ध चैतन्यस्वरूपपर। तो ऐसे ही उत्कृष्ट श्रावकोकी भी दृष्टि अपने अविकार चित्स्वरूपपर रहती है, उसमे ही यह मैं हूँ, ऐसा उनका निर्णय रहता है, पर प्रत्याख्यानावरण कषायका कुछ उदय रह गया है जिससे वे पूर्ण निरीह नही हो पाते। वहाँ अज्ञानमय इच्छा का अभाव तो चौथे गुणस्थानसे ही हो जाता है। जिसका अज्ञानमय मिथ्या भाव है उसके मिथ्यात्व ही है, अज्ञानमय क्या? इच्छा सुहा जाना, राग सुहा जाना, यह ही कहलाता है अज्ञानमय राग। रागमे राग जगना, रागको ही अपना सर्वस्व मानना यह कहलाता है अज्ञानमय राग। सो वह मिथ्यात्व ही है। तो अज्ञानमय भाव तो सम्यग्दृष्टिके किसीके भी नही होता। उत्कृष्ट श्रावकके तो होगा ही क्या? उसका तो व्यक्त रूपसे कितना ही त्याग बढ गया है, पर प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयमे वह यथाजात अविकार नही हो पा रहा, लेकिन वह इष्ट है, वांछनीय है, वदनके योग्य है।

इच्छायारमहत्थ सुत्तठिओ जो हु छडए कम्म।
ठाणे ट्ठियसम्मत्त परलोयसुहकरो होइ ॥ १४ ॥

(११६) **इच्छाकारमहार्थाभिज्ञताका परिणाम**—वह श्रावक जो इच्छाकारके महान् अर्थको जानता है। इष्ट क्या है? रत्नत्रय। रत्नत्रयके स्वरूपको जो जानता है और सम्यक्त्व रूप जिसका आचरण है ज्ञान जिसका सही है, चारित्रमे जिसकी उमंग है ऐसा जो प्रतिमाधारी श्रावक अपनी प्रतिज्ञामे रहता हुआ सम्यक्त्वसहित वर्तता हुआ आरंभ कार्यको छोड देता है वह परलोकमे सुखको प्राप्त करने वाला होता है। अन्य श्रावक जन भी जो उत्कृष्ट श्रावकसे नीचे हैं वे भी चूकि सम्यक्त्वसहित है, उनकी श्रद्धा निर्मल है, आत्मतत्त्वकी ही रुचि है वे भी कर्मको छोडकर, आरंभको छोडकर अपनी शक्ति माफिक आत्मध्यानमे रमते हैं वे भी परलोकमे सुखको प्राप्त करते हैं। श्रावक सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं। उससे ऊपर मुनि ही उत्पन्न हो सकेंगे। वे मुनि चाहे मिथ्यादृष्टि भी हो, किन्तु व्यवहार योग्य हो, मद कषाय हो, समता जिनको प्रिय हो, तपश्चरणकी साधना जिनकी निर्दोष हो, निरतिचार मूल गुणके पालनहार हो वे मुनि नवग्रैवेयक तक उत्पन्न होते है। इससे आगे तो भावलिङ्गी मुनि ही उत्पन्न हो सकते अनुदिश और अनुत्तर विमानोमे। तो श्रावक १६वें स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं, किन्तु इस पचमकालमे चूंकि सहनन छठा ही चल रहा है शरीरका संहनन मजबूत नही है और वे इतना निर्विकल्प नही बन पा सकते इसलिए वे ८वें स्वर्ग तक ही उत्पन्न हो सकते। छठे सहननका धारी पुरुष ८वें स्वर्गसे ऊपर उत्पन्न नही होता। इन

सबमे सहननोंके क्रमसे उत्पत्ति बताया है। ऊँचे संहनन वाले पुरुष ही ऊपरके स्वर्गमे और अनुत्तर तक उत्पन्न हो सकते। पर असम्प्राप्तसृपाटिका सहनन पावे। छठा सहनन, इसमें भी ८वें स्वर्गसे ऊपर न उत्पन्न होगा। देखिये विधान चलता है सब भावोंके अनुसार। उस ओरसे देखा जाय तो शका हो सकती है कि सहननसे क्या मतलब ? भाव ऊँचे होने चाहिएँ। तो कोई हीन सहननका धारी ऊँचे भाव करके दिखाये तो सही। थोडा परीषहोकी बदल तो हो जायगी, मगर उत्तम ध्यान तब भी नही बन पाता। तो होता तो भावोके अनुसार ही काम, मगर ऐसे सहननमे निर्विकल्पता बने ऐसा ध्यान नही बन पाता। तो श्रावक आजकल तो ८वें स्वर्ग तक हो जा सकते, वैसे उनकी उत्पत्ति १६वें स्वर्ग तक कही गई है, पर सहनन कम होनेसे ८वें स्वर्ग तक ही जा पाते। तो जो शुद्ध ध्यानपूर्वक चलते हैं वे श्रावक परलोकमें भी सुख प्राप्त करते हैं।

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइ करेइ णिरवसेसाइ।
तह वि ण पावदि सिद्धि ससारत्थो पुणो भणिदो॥ १५॥

(१२०) **आत्मार्थिताके अभावमे सिद्धिकी असंभवता**—इच्छाकारका अर्थ है अपने आत्माको चाहना। अविकार जो सहज स्वरूप है चैतन्यमात्र प्रतिभास स्वरूप वह जिसको इष्ट है, वह ही जिसको सर्वस्व है, ऐसी श्रद्धा वालेको कहते हैं कि उसने इच्छाकारका महान् अर्थ समझा। सो जो इच्छाकारका यह महान् अर्थ जानता है अर्थात् सहज परमात्मतत्त्वमे जिसको अनुराग है वह स्वर्गसुख पाता है। मगर जो अपने आत्माको नही चाह रहा याने इच्छाकारके महान् अर्थको नही समझ रहा वह पुरुष चाहे बहुत ऊँचे बाह्य तपश्चरण कर ले, धर्म कर ले तो भी वह सिद्धिको प्राप्त नही होता। वह ससारमे ही स्थित है। आत्मा स्वय सहज ज्ञानानद रससे परिपूर्ण है, स्वभाव ही उसका यह है, अन्य कुछ स्वभाव है ही नही। इसमे कष्टका नाम भी नही है। स्वरूप है, प्रतिभास होता है, ज्ञानमय पदार्थ है, स्वरूप प्रतिभास ही हुआ, यह ही तो कला है इस जीवमे। इसके आगे जो कुछ भी बन रहा है वह सब औपाधिक भाव है। उपाधिका सन्निधान पाकर हुआ यह प्रतिफलन है, उसे ही अज्ञानी सर्वस्व मानता है, फिर अतस्तत्त्वकी रुचि कैसे हो ? विकारको ज्ञानी पुरुष रच भी नही चाहता, उसके आत्मार्थिता है।

(१२१) **आत्मार्थिता व अनात्मार्थिताके परिणाम**—वैभव भी ज्ञानीको मिला, पापकर्मका भी प्रतिफलन हो रहा तिसपर भी चूँकि इस ज्ञानीका स्पष्ट निर्णय है अपने ज्ञानानन्द घन सहज स्वरूपका इस कारण रच भी उसका परिग्रहण नही करता। जैसे कोई मुनिपर वस्त्र डाल दे तो मुनि उस वस्त्रका परिग्रहण नही करता, मगर डाला तो है बोझ और उसको

गर्मी या जो कुछ भी प्रभाव है वह चल तो रहा, मगर वह मुनि उसको ग्रहण नही करता, ऐसे ही जिनके चित्तमे यह परम भेदविज्ञान जगा है कि मेरा स्वरूप तो मात्र चित्प्रकाश है, अब इसपर जो विकार लदा, कर्मरसका प्रतिफलन हुआ उसको यह रच भी ग्रहण नही करता, मगर उस प्रतिफलन होनेपर जो उसकी प्रवृत्ति बन जाती है सो बन भी गई प्रवृत्ति फिर भी उसको ग्रहण नही कर रहा। अतरगमे ऐसा ज्ञानप्रकाश जगा है कि वह ग्रहण कर ही न सकेगा। जैसे मोही जीव परपदार्थोंके प्रति विकल्प बनाया करते है वे उन विकल्पोको हटा ही नही पाते, विकारभावोको मोही जन हटा नही पाते, उनका विकल्प बना रहता है तो जैसे मोही जन विकारोसे न्यारा अपनेको अनुभव नहीं कर सकते ऐसे ही ज्ञानी पुरुष विकारो को अपना नही अनुभव कर सकते। कितने ही उपद्रव आये, पर जिस ज्ञानी पुरुषने अपने अविकार आत्मस्वभावका निर्णय बनाया है वह पुरुष विकारोको कभी ग्रहण कर ही नही सकता, पर जिसको आत्माके इस अविकार सहज स्वरूपका परिचय नही है वह पुरुष धर्मके नामपर चाहे कितने ही कार्य कर ले, तपश्चरण कर ले, फिर भी वह ससारीका ससारी ही है। वह मोक्षमार्गमे रच भी नही है। जिसका मोक्ष होना है उसका ही परिचय नही उसे, मोक्षमे होता क्या है इसका भी परिचय नही है। स्वरूप तो अविकार है। तभी तो यह अविकार स्वरूप प्रकट हो सकता है तो अविकार स्वरूपका, चैतन्यमात्र तत्त्वका जिसको परिचय नही है याने जो आत्माको नही चाह रहा वह पुरुष किसी भी प्रकार सिद्धिको प्राप्त नही कर सकता। सिद्धि मायने जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा ही उपयोगमे आ जाना और शाश्वत ऐसा ही अविकारपना बना रहना, यह बात अज्ञानी जीवमे प्रकट नही हो सकती। इससे इच्छाकारका सही अर्थ जानना, आत्माका अविकार स्वरूप समझना यह महान् पौरुष है।

एएण कारणेण य त अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेइ मोक्ख त जाणिज्जइ पयत्तेण ॥१६॥

(१२२) **आत्मत्वके अनभिलाषीको मोक्ष व मोक्षमार्गका अलाभ**—इससे पहली गाथा मे बताया था कि जो आत्माको नही चाहता याने इच्छाकारके महान अर्थको नही जानता वह पुरुष सिद्धि नही पा सकता। इच्छाकार मायने है आत्माके सहज अविकार स्वरूपको चाहना। तो इच्छाकार शब्दके आश्रय दो तीन गाथाओमे यह निर्णय दिया है कि जो आत्माके सहज स्वरूपको जानता है वह तो मुक्ति पायगा और जो सहज स्वरूपको नही जानता वह ससार मे ही रुलता है। अब इस शिक्षाके फलमे क्या प्रवृत्ति करना योग्य है सो बताते है। इस कारणसे अतिरिक्त जो आत्माको चाहता नही है उसको सिद्धि नही, इस कारणसे हे भव्य पुरुष तुम एक इस आत्माका ही श्रद्धान करो। कल्याणके लिए कार्य एक ही है करनेका। जो

यह भेद दिखता है कि इसने श्रावक व्रत पाला, इसने मुनि व्रत पाला सो ये इसके दो कारण है। एक तो यह कि अशुभ भावोका, विषय कषायोका आक्रमण होता है तो उससे बचनेका तुरन्त उपाय तो चाहिए, वह है व्रत। दूसरा कारण यह है कि सर्व बाधकोको दूर करता हुआ ज्ञानी अपने आत्माके स्वरूपकी ओर प्रगति करता है। तो बाधक तो समस्त पदार्थ हैं बाहर मे। जितने भी परिग्रह है सो यह परिग्रहोको हटाता रहता है। किसीका परिग्रह कम हटा किसीका अधिक हटा, किसीने बिल्कुल हटाया, तो इस वृत्तिसे व्यवहार धर्ममे भेद नजर आता है, मगर सभी लोग चाहे श्रावक हो, चाहे मुनि हो, जो भी आत्मकल्याण चाहता है. उसका मूल धर्म यही पालनेमे आ रहा कि आत्माके सहज अविकार स्वरूमे यह मैं हू, इस प्रकारका अनुभव बनाना, सो हे भव्य जीव तुम इस ही आत्माका श्रद्धान करो। मनसे, वचनसे, काय से इस ही स्वरूपमे रुचि करो। बोलो तो इस ही को बोलो। शरीरसे चेष्टा करो तो इस ही के अनुरूप, याने एक आसनसे स्थिर होकर बैठ गए और मनसे चिन्तन करें तो इस ही आत्म-स्वरूपका, दूसरा कुछ काम ही नही।

(१२३) **सहज अविकार चैतन्यस्वरूपकी रुचिसे सर्वलाभ**—यहाँ एक बात और समझ लेना है कि जो इस पुरुषार्थको करेगा, सहज अविकार चैतन्य मात्र अपनेको अनुभवेगा, ठीक ठीक जानेगा, उसकी इस वृत्तिके होने पर जब तक ससारमे भव शेष है तब तक उत्तम भव ही मिलेंगे, वह ससारमे भी दु खी न रहेगा। तो भला बतलाओ ऐसा उपाय जो कि स्वाधीन है, पूर्णतया स्वभाविक है, किसी भी अन्य बाह्य वस्तुकी अपेक्षा न पडना सुगम है, और जब तक ससारमे रहे तब तक आनन्दसे रहे और ससार छूट गया तो प्रकट आन्नद ही आनन्द है। और इन सब फलोको बातका उपाय है केवल एक ही,—अविकार चैतन्य प्रकाशमात्र अपने सत्त्वमे अपना अनुभव करना। तो जिसको सम्यग्ज्ञान जगा, यह ज्ञान प्रकाश मिला तो वह क्यो न अपने अन्त. पुरुषार्थको करेगा ? सो हे भव्य पुरुष तुम भी इस ही अतस्तत्त्वका श्रद्धान करो और हर पुरुषार्थसे इस ही स्वरूपमे रुचि करो, मग्न होवो। इससे ही मोक्ष पद प्राप्त किया जायगा। जिस उपायसे मोक्ष पद मिले उसके लिए तो सब तरहसे उद्यम करना। थोडा ज्ञान पाया, थोडी चर्चा कर ली, थोडा चिन्तन कर लिया, थोडा सत्सग कर लिया और इतनेमे ही संतुष्ट होकर रह जाना यह आत्मार्थीका काम नही है। उसकी दृष्टिमें तो बहुत बड़ा काम पडा है, बाहर नही, अन्दरमे। बडा भी कुछ नही, स्वयमे मग्न हो जाना। और बडा यो कहा जाता कि इसके खिलाफ बहुत दूर पहुच गए, सो जितनी दूर पहुच गए वहांसे लौटना यह तो बडा काम हुआ ना ? लौटना ही बडा काम है। अपने स्वरूपमे रम जाना बड़ा कुछ नही है। वह तो अपने स्वरूपकी वृत्ति है। सो जिस

उपायसे मोक्ष बनता है उसको जानना, श्रद्धान करना, अन्य आडम्बरोंसे कोई प्रयोजन नही। जिसको आडम्बर रुचते हैं, धर्मके नामपर बडे आडम्बरसहित जो चलते हैं वैसा ही उपयोग रहता है वे पुरुष ज्ञानी नही है। ज्ञानी पुरुष तो केवल एक ही लक्ष्य बनाये हुए है कि यह है मेरा स्वरूप समुद्र, उसमे कैसे मैं नहाऊँ ? इस प्रक्रियामे चलते हुए हैरानी भी अनुभव करता। जैसे कभी स्वप्न आया कि एक बहुत बडा समुद्र या नदी है और प्यासके मारे गला सूख रहा है, वह पानी पीनेके लिए बहुत बहुत प्रयत्न करता, प्रयत्न करके हार गया, मगर पानी तक नही पहुंच पाता, उस समय वह बडी हैरानी अनुभव करता है। कभी ऐसे भी स्वप्न होते हैं। तो यहाँ ज्ञानीको ऐसी ही हैरानी होती है कि नजर आ रहा यह है परम तत्त्व, इस ही मे मग्न होना है, उसके लिए मन भी कर रहा, पर यह बान नही बन पा रही तो ज्ञानीका लक्ष्य एक ही है। उसे अन्य आडम्बरसे प्रयोजन नही।

वालग्गकोडिमत्त परिगहगहण ण होइ साहूणा।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्ण इक्कठाणम्मि ॥१७॥

(२२४) साधुकी निष्परिग्रहता —जो मोक्षमार्गके लिए अपना पुरुषार्थ लगा रहे हैं वे समस्त परिग्रहोको त्यागकर निष्परिग्रह वृत्ति रखते है। निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि मोक्षमार्ग मे प्रगति करते हैं। बालके अग्रभाग बराबर याने बाल जितना मोटा होता है उतने अग्रभाग बराबर जो परिग्रहको ग्रहण करता है वह साधु नही है। साधुके तो बालके अग्रभागके नोक मात्र भी परिग्रहका ग्रहण नही है ऐसा निष्परिग्रह है, जिसकी धुनमे केवल सहज आत्म-स्वरूप समाया है उसके परिग्रहका क्या प्रसग ? जिसने केवल आत्माके सर्वस्वको ही चाहा है, उसके लिए ही उद्यम है वह निष्परिग्रह होकर इस ही अतस्तत्त्वकी साधना करता है और उस निष्परिग्रहताका ही यह नमूना है कि वह साधु आहार हाथमे करता है। अब कोई आहार तो हाथमे ही लेवे और बाह्यसे दिगम्बर मुनि बने और चित्तमे बहुतसा परिग्रह बसाये, मोटर, रसोईका सारा सामान, बर्तन, उसे ग्रहण चाहे कोई न करे पर मनमे अगर बात आ गई, तो वह तो परिग्रह है। और ऐसे ही मन वाले साधुवोके बारेमे बताया है कि कई करोड ऐसे मुनि नरक जायेंगे भला यह जगतको कितना ठगा जा रहा है कि बाह्यमे तो पंचम परमेष्ठीका रूप रखा हो और भीतर मनमे अन्य-अन्य विकल्प परिग्रह समा रहे हो, अन्तस्तत्त्वकी निरन्तर रुचि न जग रही हो वह अपना भी विनाश कर रहा है और उस सगतिमे दूसरेका भी लाभ नही है। जिसको मोक्षकी इच्छा है उसको केवल एक ही लक्ष्य रखना होगा कि यह मैं केवल चैतन्यमात्र हूँ। तो मुनि महाराज जो अत्यन्त निष्परिग्रह हैं, पर जीवन तो है, असमयमे मरना तो बुद्धिमानी नही है, इसलिए इस शरीरको सेवक जान

कर इसको आहार दिया जाता है, सो मुनि उस आहारकी विधि स्वयं नही बनाता, स्वयं नही आहारकी सामग्री रखता, किन्तु जो श्रावक बना रहा है उसकी भक्ति पूर्वक दिया हुआ आहार ग्रहण करते हैं और वह भी केवल अपने हाथका ही बर्तन बनाकर आहार ले लेते हैं, ऐसी निष्परिग्रहता है इस दिगम्बर मुद्रामे, तो जहाँ आहार परका दिया हुआ लें और हाथ में लें तो वे निष्परिग्रह ही तो है याने किसी भी अन्य वस्तुमे चित्त नही है सो विरक्ति और परिस्थितिमें ऐसा इसे करना होता है।

जयजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुय तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्॥ १८॥

(१२५) **तिलतुषमात्र भी परिग्रहणमे मुनिकी दुर्गति**—जो यथाजात रूपकी तरह तो भेष रखे याने जैसे बालक उत्पन्न होता है, निर्लेप निष्परिग्रह, कुछ भी साथ नही, ऐसा तो कोई भेष रखे और अपने पाणिपात्रमे आहार करे, उसकी ऊपरी चर्या तो ठीक रखे, लेकिन थोडा बहुत भी अन्य वस्तुको मनसे, वचनसे, कायसे, भावसे ग्रहण करे, अपनाये तो वह मुनि निगोदमे जाता है। यथाजात रूप तो दिगम्बर निर्ग्रन्थको कहते हैं। सो अगर वह थोडा भी परिग्रह रखें तो उसको जिनसूत्रकी श्रद्धा नही है, बिल्कुल निर्लेप, निशल्य, कुछ भी बाह्यसे मतलब नही, केवल चित्स्वरूपकी ही धुन यह है मुनिका स्वरूप। तो जो थोडा बहुत भी बाह्य वस्तुको रखता है उसको जिनसूत्रकी श्रद्धा नही है। अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, मिथ्यात्वका फल निगोद है और कदाचित् कुछ तपश्चरणके कारणसे वह स्वर्गादिकमे भी जाय तो वह वहाँसे चिगकर एकेन्द्रिय होकर ससारमे ही भ्रमण करेगा। जहाँ चेतने लायक मन मिला था, मनुष्यका मन बडा ऊँचा समझा जाता है, और उस मन वाले जीवमे भी उत्कृष्ट पद मुनिका पद धारण किया। जब वहाँ ही छल बल रहा, वहाँ ही परिग्रहका ग्रहण रहा और कभी किसी तपश्चरण या मंदकषाय होनेसे देवायुका बध हुआ और कुछ छोटे स्वर्गोंमे उत्पन्न हो गया तो वहाँ कैसे अपनी साधना बनायगा। जब इतने बडे मौकेको बिगाड कर गया तो वहाँ भी आशा नही है, नियम तो नही, पर आशा नही है, ऐसा जीव वहाँसे चिगकर एकेन्द्रिय होकर संसारमे ही रुलता है।

(१२६) **मुनिके निष्परिग्रहत्वका मूल परका अपरिग्रहण**—यहाँ थोडा इस बातपर विचार करना कि मुनिके तो शरीर है, आहार भी करते हैं, कमण्डल, पिछी, पुस्तक भी रखते हैं, फिर उनको निष्परिग्रह कहा कि वे तृणतुष मात्र भी परिग्रह नही रख रहे तो यह कैसे संभव है ? आप इसका चिंतन करिये—मूलतः तो ध्यानमे आयगा कि मिथ्यात्वसहित राग भावसे परको अपनाकर अपने विषय कषाय पोषनेको उसने रखा तो उसका नाम परिग्रह है।

अब इस कुञ्जीसे प्रत्येक समागमकी परीक्षा कर सकते हैं कि यह रागभावको अपना रहा या नही और अपनी ख्यातिके लिए, आरामके लिए वह रख रहा है कि नही ? यदि रागभाव है और अपने विषय कषाय पोषनेको है तो परिग्रह है। मुनि निष्परिग्रह है। कोई यह बतलाये कि विहार करते हैं और रास्तेमे १००-२०० मील तक श्रावकोंके घर नही पडते, इसलिए हम मोटर रखते हैं, ऐसी युक्ति कोई मुनि दे तो वह युक्ति भी ठीक नही है, क्योंकि उसने तो इस कारण रखा कि मेरे मौजमे बाधा न पडे। हर जगह आरामके साधन रहे तो यह विषय कषाय पोषनेका ही तो प्रयोजन रहा। मुनि तो अपनी ओरसे बिल्कुल निशल्य होता है, निरीह होता है, तभी तो उसे अरहतका मानो लघुनन्दन कहते हैं। और कही जिनप्रतिमाके दर्शन न हों तो मुनिके स्वरूपके दर्शन करके वही बात बनती है, जिसकी इतनी तो महिमा है और वह स्वय मनमे बाह्य पदार्थोंके विकल्पमे डूब रहा हो तो वह तो भव सागरमे डूब रहा। तो रागभावको कुछ अपनाना नहीं, विषय कषाय पोषनेको रखना नही, किन्तु केवल सयमके लिए ही रखा जा रहा जो कुछ रखा जा रहा। तीन उपकरण हैं—पिछी, कमण्डल और पुस्तक।

(१२७) **शरीर होनेपर भी मुनिके निष्परिग्रहत्व**—अब रह गया एक शरीर। सो कोई कहे कि शरीर भी तो रख रहे वे, तो वह तो जीवनपर्यन्त छूटता नही। तो उस शरीर से ममत्व ही छोडना बस यह ही शरीरके परिग्रहका त्याग कहलाता है। वे कही शरीरको अलग फेंक दें याने मर जायें इस तरहका कार्य तो निषिद्ध है। शरीर तो रह रहा है, उसको जबरदस्ती मारना नही है, पर उस शरीरके प्रति ममता न रहनी चाहिए, यह ही शरीरके परिग्रहका त्याग कहलाता है और जिसको शरीरमे ममता नही, शरीरको अत्यन्त भिन्न जान रहा और अपने आपके स्वरूपमे जिसका उपयोग रम रहा ऐसा ही पुरुष तो डंस मसक क्षुधा तृषा आदिक अनेक परीषहोपर विजय प्राप्त करते हैं, तो जब तक शरीर है तब तक आहार न करें तो फिर शरीरमे सामर्थ्य न रहेगी और सामर्थ्य नही है तो सयम न सधेगा। इस कारण संयमकी साधनाके लिए विधि पूर्वक आहार लेने जाते, आसक्त होकर नही, इसलिए शरीर परिग्रहमे शामिल नही है।

(१२८) **शौच, दया व ज्ञानके उपकरणमे साधुकी निष्परिग्रहता**—कमण्डल है शौचका उपकरण। अगर शुद्धि न रखें मल मूत्रकी अशुद्धि करके तो पंच परमेष्ठीकी वदना करके भक्ति आदिक कैसे करें ? उसमे अविनयका दोष है और मन भी न लगेगा, इस कारण शुद्धिके वास्ते कमण्डल रखते हैं, उसका भी प्रयोजन सयमकी साधना है, विषय कषायोका पोषण नही। पिछी रखते हैं तो वह है दयाका उपकरण। जहां बैठना वहां

पिच्छी से पोछकर निर्जन्तु स्थानपर बैठना। कोई चीज धरना उठाना तो पिच्छीसे शोधकर उसे धरना उठाना। विहार कर रहे, धूपमे चले जा रहे, रास्तेमे पेडोंकी छाया आती है, तो जहां छाया शुरू होगी वहां धूपमे वे खडे रहकर पिच्छीसे पूरा अग झाडते ताकि गर्मी पसंद करने वाला कोई कीडा सूक्ष्म जतु शरीर पर न रहे, क्योकि अब छायामे, शीतल स्थानमें आ रहा है। तो गर्मी पसंद करने वाले जंतुको बाधा होगी छायामे। छायासे बिहार करके जाना है धूपमे तो वह अपने शरीरको पिच्छीसे झाड पोछकर जाते क्योंकि छायामे रहने वाले कीडेको गर्मीमे पहुंचने पर बाधा होगी। सो उस जीवको मेरे द्वारा बाधा न पहुंचे, कष्ट न हो, यह सोचकर मुनिराज अपने शरीरको पिच्छीसे पोछते हैं। तो यो जीवदया पालन करने की दृष्टिसे पिच्छी उपकरणकी आवश्यकता हुई। जीवदयाके लिए, सयम साधनाके लिए मुनिजन पिच्छी उपकरण रखा करते हैं, न कि शौक या विषय कषायोका पोषण करनेके लिए रखते हैं। अब यदि कोई मुनि पिच्छीको बहुत अच्छे ढगसे सजाकर रखे और उसकी सुन्दरता को जब चाहे देखे तो वह उपकरणका उद्देश्य न रहा। अब उसका उद्देश्य रागभावके पोषणका बन गया। कोई कमण्डलको बहुत सुन्दर चमकीला डिजाइनदार बढिया चित्रित कराकर रखे तो उसके लिए वह उपकरणका ध्येय न रहा, उसका ध्येय रागभाव पोषनेका रहा। तो जो मुनिजन पिच्छी कमण्डल रखते हैं वे सयमकी साधनाके लिए रखते हैं, विषय कषाय पोषनेके लिए नही। पुस्तक है सो ज्ञानका उपकरण है। पुस्तक न रखें तो पठन पाठन, ज्ञानका अर्जन कैसे करें? तो इन तीन उपकरणोका रखना ममत्व पूर्वक नही है। वहां रागभाव नही है, अन्तमे तो पिच्छी, कमण्डल पुस्तक आदिकका ग्रहण ये सब छूट जाते है और वह आत्मा अपने शुक्लध्यानमे रहता है, किन्तु तब तक आहार विहार पठनकी क्रिया मे रहते हैं जब तब केवलज्ञान नही उत्पन्न होता है। उन सब क्रियावोको छोडकर, शरीर का सर्वथा ममत्त्व छोडकर मुनि अवस्थामे रहकर स्वरूपमे लीन होते हैं तो उत्कृष्ट निर्ग्रन्थ अवस्था बनती है और फिर ऐसे मुनिजन श्रेणीको प्राप्त कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

(१२६) अन्यथाप्रवृत्तिमे सर्वज्ञताके लाभकी असंभवता—स्वरूपप्रतिकूलवाली अन्यथा क्रियावोमे रहकर केवलज्ञान न बनेगा। मुनिक्रियामे रहते हुए ही भावोकी साधना बन पायगी कि जिससे केवलज्ञान उत्पन्न होता है। अन्य वस्त्रधारी जटाधारी लाल वस्त्र वाले, श्वेत वस्त्र वाले, उनका यह आशय रहता है कि किसी भी अवस्थाओमे केवलज्ञान मिल सकता है, और यह कहना मिथ्या है। जब बाह्यमें अन्य पदार्थोंके प्रति प्रवृत्ति रही तो वह उपेक्षा कहां है जिससे कि मोक्षका मार्ग बनता है। यद्यपि श्वेताम्बर मतमे भी निर्ग्रन्थ दिगम्बरको माना है नग्नसाधुको, और उसे जिनकल्पी शब्दसे कहा है, पर उनका कहना यह है कि जिन-

कल्पी होना, नग्न दिगम्बर होना यह तो उत्सर्ग मार्ग है और वस्त्रादिक रखकर साधुपना साधन करना यह अपवाद मार्ग है। और इससे बढ करके फिर और आगे भी शिथिल हो जाते। शिथिलताकी शुरुआत अगर हो जाय तो वह आगे शिथिल ही शिथिल बनता चला जायगा। तब कहने लगे कि वस्त्र भी उपकरण हैं, धर्मका उपकरण। और ऐसा चलते चलते यहाँ तक आ जाते हैं कि काम विकार अगर ध्यानमे बाधा दे तो उसको दूर करनेके लिए स्त्री प्रसंग भी कर सकते हैं। जहाँ शिथिलता शुरू हुई वहाँ फिर उसका नियंत्रण खतम हो जाता है। शिथिलताको ओर बढता है। तो तीन तो उपकरण ठीक है मगर इनके अतिरिक्त यदि किसी चौथी बातको उपकरण मानकर कोई मुनि ग्रहण करे तो उस मुनिमे शिथिलता विशेष विशेष आती ही रहती है। अत यथाजात निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि ही व्यवहारमे मोक्ष-मार्ग है।

जस्स परिग्गहगहण अप्प बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहियो निरायारो ॥१६॥

(१३०) **मुनिवेषमें परिग्रहग्रहणकी गर्हितता**—जिसके भेषमे परिग्रहको ग्रहण करना बताया गया है, चाहे थोडा हो चाहे बहुत हो वह तो जिनागममे गर्हित है, निंदनीय कहा गया है। साधु परमेष्ठी एक बहुत ऊँचा पद है जिसकी सर्व लोग वंदना करें, जो विश्ववद्य रहे और वह लौकिक पुरुषोकी भाँति परिग्रहका भाव रखे उसपे यह बात पोषे कि मैं निष्परिग्रह हूं तो उसमे छलका भी दोष है, लोभका भी दोष है, मानका भी दोष है, क्योंकि अभिमान करेगा अपनेको गुरु मानकर, और ऐसा कोई नही मानता तो क्रोध भी पद पद पर आयगा। तो ऐसे पुरुषको कषायोकी तीव्रता है। जिन मतोमे गुरु मानकर बताया हो इतने पात्र रख लो, जो जो भी आवश्यक हुए शरीरके पोषनेके उन उन परिग्रहोका जो रखना बतावे सो सिद्धान्त अज्ञानियोका बनाया हुआ है, निन्द्य है, जिनेन्द्र शासनमे परिग्रहरहित हो निर्दोष पुरुष को मुनि कहा गया है। कही भी दोष बढता है तो मूलमे बहुत छोटा दोष हो पाता है और उसीका बढ बढकर महादोष बन जाता है। जैसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमे उनके आगममे किसी साधुको परिस्थितिवश एक वस्त्रकी आज्ञा है, दूसरे वस्त्रकी आज्ञा नही है, क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय तो भद्रबाहु आचार्यके समय अकालके वाद बना है। दिगम्बरपना पूर्ण रूपसे पहले था ऐसा श्वेताम्बर लोग भी मानते हैं और उनके आगममे भी जिनकल्पी मुनि निर्ग्रन्थ मुनि की उत्कृष्टता बताते हैं। तो निर्गन्थ दिगम्बर मुनिसे कुछ थोडी शिथिलता आयी तो एक वस्त्र की बात मुश्किलसे आ सकती है और लिखा भी है स्थावरकल्पी रहे कोई तो एक एक वस्त्र धारण करना होगा। अब एक वस्त्र जब धारण कर लिया कुछ समय बाद एकके बाद दो हो

जायें तो वहाँ कौन पूछने वाला है ? दो के चार हो गए, फिर ८ हो गए, अब कौन जानने वाला है कि कहाँ क्या लिखा है ? और, भगवतीसूत्र आदिमे जहाँ लिखा है उसको लोगोसे बताये नही कि आगममे यह लिखा है तो इस तरह बहुत बडा दोष चलने लगता है। इसी कारण तो बताया गया है व्रतीको कि अल्प दोष भी न लगना चाहिए। पर थोडा सा दोष लगा और मन हो गया स्वच्छन्द तो उस स्वच्छन्द प्रवर्तनके कारण बहुत बडे दोष तक पहुंच सकता है। तो जिनके यहाँ परिग्रहका ग्रहण बताया गया है और परिग्रहधारियोको गुरु बताया गया है वह जैनशासनसे बहिर्भूत तत्त्व है।

पचमहव्वयजुत्तो तिहि गुत्तिहि जो स सजदो होइ।
णिग्गथमोक्खमग्गो सो होदि हु वदणिज्जो य ॥२०॥

(१३१) **निर्ग्रन्थ महाव्रती त्रिगुप्तिगुप्त संयमीकी मोक्षमार्गस्थता**—जो मुनि ५ महाव्रत करके तो सहित हो, तीन गुप्तियोसे सयुक्त हो वह कहलाता है सयत याने सयमवान। सो निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है सो ही वास्तवमे बदनीय है। बदनीय तो आत्माका स्वभाव है, जहाँ वह स्वभाव पूर्णतया प्रकट है वह तो देव है, वह वदनीय है और जहाँ वह स्वभाव पूर्णतया तो नहीं प्रकट है, एक देश प्रकट है और उसके विकासमे ही जिसकी अन्तर्दृष्टि चल रही है वह गुरु कहलाता है, सो गुरु वदनीय है और ऐसे ही आत्मविकासकी जहाँ बात लिखी हो, उसका उपाय बताया गया हो वह शास्त्र कहलाता है, तो शास्त्र भी वदनीय है। तो आत्माका स्वभाव निश्चयतः वदनीय है। वदनमे नम्रता आती है, नम्रताके मायने झुकाव। तो आत्मस्वभावकी ओर झुकना, उसे ही हित रूपसे मानना यह बात उनको प्रकट होती है जिनको आत्मस्वभाव विकसित होना है तो उसकी धुनमे रहने वाला पुरुष समस्त बाधक तत्त्वोको हटाता जाता है और जहाँ सारे बाधक तत्त्व हट गए बस वही कहलाती है मुनिदशा। जिसको केवल आत्मासे ही प्रयोजन है वह अन्य वस्तु कैसे रख सकता है ? उसे मात्र पिछी, कमण्डल, पुस्तक रखना है तो वह सहायक ही है, क्योकि जीवहिंसा करते हुए वह रहेगा कैसे ? इस लिए दयाका उपकरण पिछी रखे हैं। शौचादिक कोई मल मूत्र क्षेपण आदिक करें तो अशुद्ध करें तो अशुद्ध अवस्थामे ग्रन्थ कैसे छुवेंगे ? शास्त्र पढना, देव वंदन करना आदिक ऊँची-ऊँची क्रियायें कैसे उस अशुद्ध अवस्थामे करेंगे ? तो शौचका उपकरण कमण्डल रखे हुए है, और ज्ञानमे कैसे रमे, यह सबसे ऊँचा उपकरण है, सो शास्त्र रखते है, मगर इसके अतिरिक्त किसी भी अन्य बातसे प्रयोजन नही। अगर तिल तुष मात्र भी अन्य चीज रखे तो उसका प्रयोजन सिर्फ राग हैं, और कोई प्रयोजन नही। तो जो पच महाव्रतकर सहित हो, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन ५ पापोका सर्वथा त्यागी हो, मनको वश करना, वचनको

वश करना, शरीरको वश रखना, इन तीन गुप्तियोसे सहित हो वही निर्ग्रन्थ स्वरूप है और वही वदना किये जाने योग्य है, और जो कुछ भी थोडा बहुत परिग्रह रखते हैं वे महाव्रती नही, सयमी नही, मोक्षमार्गी नही, बल्कि गृहस्थके बराबर भी नही। गृहस्थ तो परिग्रह रखकर अपनेको गृहस्थ मानते है, श्रावक समझते हैं, गुरुपनेका अभिमान तो नही रखते, पर कोई परिग्रह रखकर गुरुपनेका अभिमान रखता है तो वह गृहस्थसे भी बुरा है। तो जैन शासनमें एक निर्ग्रन्थ गुरु ही वदनीय हैं।

दुइय च उत्त लिग उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्ख भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोरोण ॥२१॥

(१३२) उत्कृष्ट श्रावकोका जैनशासनमे द्वितीयलिङ्ग—वदनीय प्रथम लिङ्ग है मुनिका, दूसरा लिङ्ग वदनीय है उत्कृष्ट श्रावकका उत्कृष्ट श्रावक हैं क्षुल्लक, ऐलक, अर्जिका, उन्हे गृहस्थ नही कहा जा सकता। श्रावक और गृहस्थमे अन्तर है। गृहस्थ तो तब तक कहलाता है जब तक कि वह घरमे रह रहा है। घरका सबध है, पर जिसका घरका सम्बध नही रहा, त्याग कर दिया और श्रावकके ऊँचे व्रतोंका पालन करता हुआ रह रहा उसे गृहस्थ नही कहा जाता, उसे उत्कृष्ट श्रावक कहा जाता। सो ऐसा उत्कृष्ट श्रावक ११ वी प्रतिमाका धारी है। वह घूमकर भिक्षावृत्तिसे चर्या कर आहार ग्रहण करता है, और जो ऐलक उत्कृष्ट श्रावक है वह अपने हाथमे ही भोजन करता है, पात्र भी ग्रहण नही करता और समितिरूप अपनी प्रवृत्ति रखता है। भाषा समितिका आलम्बन रखता है अथवा मौन ग्रहण करता है। तो मुनिका स्वरूप तो यथाजात है। और उत्कृष्ट श्रावक दो प्रकारके हैं—एक क्षुल्लक और दूसरा ऐलक। क्षुल्लक तो सिर्फ वस्त्र और कोपीन धारण करता है, भिक्षाभोजन करता है और ऐलक उत्कृष्ट श्रावक करपात्र भोजन करता है और समितिरूप प्रवृत्ति रखता है। उद्देश्य मुनिका और उत्कृष्ट श्रावकका एक ही है। अपना जो शाश्वत स्वरूप है उसरूप अपनेको अनुभवना, सबका एक ही लक्ष्य है। मोक्षमार्ग एक ही है, अपने सहज स्वरूपका आलम्बन। चाहे वह अपने मुनि भेषमे आगे बढ रहा हो, चाहे श्रावक भेषमे ही चल रहा हो, पर लक्ष्य सबका एक ही रहता है। जैसे शिखर जी की यात्रा अनेको लोग पैदल करते हैं तो जो हट्टे कट्टे जवान लोग होते हैं वे तो आगे बढ जाते है और जो बूढ़े कमजोर लोग होते हैं वे धीरे-धीरे पीछेसे पहुचते हैं, पर लक्ष्य उन सबका एक ही है—शिखरजी की बदना करना ऐसे ही जो मोक्षमार्गमे चल रहे हैं, श्रावक पीछे पीछे हैं, मुनिजन आगे आगे बढ रहे हैं, पर लक्ष्य सबका एक है कि आतमाका जो एक ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव है उसरूप ही रहना, रागद्वेषकी तरंग न आने देना, ऐसी वे अपनी भावना रखते है।

लिंगं इत्थीण हवदि भुजइ पिंडो सुएयकालम्मि ।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुजेइ ॥२२॥

(१३३) **आर्यिकाका जैनशासनमें तृतीय लिङ्ग**—तीसरा लिङ्ग है स्त्रीका अर्जिकाका। वे भी दिनमे एक ही बार भोजन करती हैं। एक वस्त्र धारण करती है और किसी भी समय वे नग्न नही होती। स्त्रीका नग्न रूप निषेध है, वह श्रावक तक ही रह सकती है, उसका साधु परमेष्ठीका दर्जा नही हो सकता। तो ११ वी प्रतिमामे स्त्री कोई क्षुल्लिका होता है कोई अर्जिका होती है, सो भोजन तो एक ही बार है पर वस्त्रका अन्तर है। अर्जिका एक वस्त्र धारण करती है और क्षुल्लिका दो वस्त्र धारण करती है, और इनको अपने पदमे अभिमान नही होता। स्त्री पर्यायकी निन्द्यता उनके चित्तमे रहती है। स्त्री पर्याय अच्छी पर्याय नही, उससे विरक्त रहती है। तो जिसको स्त्री पर्यायसे विरक्ति है वह उसमे अभिमान कैसे कर सकता है ? भले ही आज कुछ ऐसा देखा जाता कि स्त्री अगर क्षुल्लिका, अर्जिका बन जाय तो उसे अभिमान अधिक हो जाता, पर यह उनकी बहुत बडी भूल है। पुरुष इतना अभिमान नही करता ऊँचा व्रत लेनेपर भी जितना कि प्रायः स्त्रीजनोमे देखा जाता है जो स्त्रियाँ योग्य हैं वे तो अभियान नही करती, पर बजाय स्त्री पर्याय निन्द्य है ऐसा समझनेके अज्ञानी स्त्री अपने उस पदमे अभिमान रखती है। और यथातथा गृहस्थसे व्यवहार रखती है। तो जो अर्जिका है क्षुल्लिका है, सम्यग्दर्शन सहित है उसको अभिमानका प्रसग नही है। वह तो निरन्तर लिङ्ग रहित आत्मस्वरूपकी भावनामे अपना समय व्यतीत करती है। तो ऐसा तीसरा लिङ्ग है यह स्त्रीका।

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइ वि होइ तित्थयरो ।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २३ ॥

(१३४) **सवस्त्रमुनियोंकी उन्मार्गरूपता**—जैन शासनमे वस्त्ररहित आत्माकी उपासनाकी धुन वाले पुरुष ही बदनीय कहे गए है। जो वस्त्रका धारण करने वाला हो वह मोक्ष नही पा सकता। तीर्थंकर भी हो और जब तक वे वस्त्रधारी है, गृहस्थ है तब तक उनका भी मोक्ष नही होता। वे भी साधुदीक्षा लेते, निर्ग्रन्थ होते, दिगम्बर रूप धारण करते और उस स्थितिमे आत्मसाधना बनाते और शुक्लध्यान प्रकट होता तब उनका मोक्षपना बनता। तो इस कारण दिगम्बर स्वरूप ही मोक्षका लिङ्ग है। बाकी अन्य सब लिङ्ग उन्मार्ग हैं, मार्गसे विपरीत है। तीर्थंकरोका नग्न होना श्वेताम्बर शास्त्रोमे भी बताया है। सर्व तीर्थंकर नग्न अवस्थामे ही रहते हैं। पर जिनसे नग्नता नही सही गई ऐसे साधुजनोने अपनी ही बात दुनियामे प्रशंसनीय रखनेके लिए लिख दिया है कि होते तो वे नग्न ही है मगर इन्द्र उनपर एक वस्त्र डाल देता है। तो नग्नता यह मोक्षमार्ग है। अन्दरसे भी नग्न

हो मायने रागद्वेष विकार इससे दूर हो और बाहरसे वे नग्न हैं ही तो ऐसे द्विविधनग्न पुरुष
को मोक्ष होता है। नग्नके मायने है कि बाहरी चीजोका सम्पर्क न रखना। खालिस अकेला
ही रह जाना। जैसे शरीर। केवल शरीर ही रह गया, उसपर वस्त्र नहीं, किसी पदार्थका
सयोग नही तो वह नग्न कहलाता है। तो अध्यात्मनग्न कौन कहलाया कि जहाँ दर्शन ज्ञान
स्वरूपी यह अंतस्तत्त्व अपने ठीक स्वरूपमे रहे, इसमे विकारका प्रवेश न हो, किसी प्रकारका
योग तरग न आये, ऐसी स्थितिका नाम है अध्यात्म नग्नता। तो जो पुरुष अविकार है, अपने
स्वरूपकी धुनमे बसा है वह पुरुष तो मोक्षमार्गी है, पर जो बाह्य पदार्थोंके विकल्पमे लगा है,
वस्त्रादिक अल्प परिग्रह धारण किए हो वह सब उन्मार्ग कहलाता है।

लिंगम्मि य इत्थीण थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहमो काओ तासि कह होइ पव्वज्जा ॥२४॥

(१३५) **स्त्रियोके प्रवज्याके अनधिकारका कारण**—स्त्रियोको दीक्षा नही दी जाती
याने मुनिदीक्षा स्त्रियोको नही मिलती, उसका कारण क्या है कि स्त्रीका शरीर ही ऐसा है
कि जो हिंसाका धाम है। स्त्रीकी योनिसे, स्तनोके अन्दरसे, कांखोसे, सूक्ष्म कायके जीव नि-
रन्तर उत्पन्न होते रहते है। जो लब्धपर्याप्तक असंख्यात मनुष्य बताये गए हैं वे स्त्रीके शरीर
के आधार ही बताये गए है। तो जहाँ ऐसे सूक्ष्म काय दृष्टिके अगोचर जीव उत्पन्न होते
रहते हैं उन स्त्रियोके प्रवज्या कैसे हो सकती है? मुनि दीक्षा नही है स्त्रीके। इसके अति-
रिक्त स्त्रीके आखिरी तीन सहनन बताये गए हैं। पहलेके तीन सहनन स्त्रीके नही होते।
वज्रवृषभनाराचसहनन, नाराचसंहनन और अर्द्ध नाराचसंहनन, इनमे से मोक्ष होता है वज्र
वृषभनाराचसहनन वालेका। तो जिसके दूसरे तीसरे भी सहनन नही हैं, पहलेकी तो कथा
ही क्या कहे, वहाँ मोक्ष कैसे हो सकता है? यह तो करणानुयोगका सिद्धान्त है। इसके अति-
रिक्त लज्जा और माया ये दो बातें स्त्रीमे स्वभावत हैं। उसके ऐसी निर्विकल्पता आ ही नही
सकती कि वह नग्न भी हो सके। वह स्वय नग्न न होगी और कोई ढीठ पुरुष मानो ऐसा
काम करे तो वह जैन शासनसे बहिर्भूत है। तो स्त्रीजनोंके मुनि दीक्षा नही कही गई। तो
ये क्षुल्लिका अर्जिकाके पद उत्कृष्ट श्रावकमे ही माने गए। तो इस तरह जैन शासनमे तीन
लिङ्ग बदनीय कहे—(१) मुनि (२) क्षुल्लक ऐलक याने ११ प्रतिमाधारी श्रावक पुरुष और
(३) अर्जिका। ये तीन लिङ्ग बदनीय है। क्षुल्लक ऐलक मायने ११वी प्रतिमा और क्षुल्लिका
अर्जिका मायने ११ वी प्रतिमा।

(१३६) **गुरुताके त्रिलिङ्गके अतिरिक्त अन्य वेशोंकी आत्मविकासाननुरूपता**—तीन
लिङ्ग यो समझना—(१) मुनि, (२) उत्कृष्ट श्रावक पुरुष और (३) उत्कृष्ट श्राविका स्त्री

इनके अतिरिक्त जो अन्य-अन्य तरहके दुनियामे भेष चल रहे हैं वे वंदनीय नही। जैसे तापसी लोग, अनेक प्रकारके संन्यासी जन भभूत लगाकर, सिरमे जटायें बांधकर, बनमे रहकर, कुटीमे रहकर बनफल भक्षण कर तपश्चरण तो बहुत करते है किन्तू बाहरी पदार्थके लगाव पर उनकी दृष्टि चल रही है, देहको ही उन्होने साधु माना है। और देहके तपश्चरण भेष-भूषामे मोक्षमार्ग समझा है। कितने ही लोग महीनो खडे ही खडे तप करते हैं, कोई औंधे होकर तप करते हैं, कोई पेडसे पैर लटकाकर तप करते है, कोई कोई तो वृक्षके किनारे खड़े खड़े सो लेते है पर बैठते नही, न लेटते हैं। यो कितने ही कठिन कठिन श्रम करते है, पर सरल जो अंतस्तत्त्व है उसकी दृष्टि न होनेसे उनकी बाह्य बात भी सरल नही हो पाती तो अविकार अंतस्तत्त्वकी जिसे दृष्टि प्राप्त हुई है वह शरीरमे भी विकार नही करता। किसी दूसरे पदार्थका लेप करना यह शरीरमे विकार करना है। यथाजात लिङ्ग बस त्याग त्याग यह ही जिसकी धुन है, घर ममत्वका आश्रय है, घरका त्याग किया, परिजन ममत्व के आश्रय होते हैं उनका त्याग किया, कुटुम्ब देश जन मित्र जन जो जो भी उसे बाधक जंचे आत्मतत्त्वको छोडकर बाकी परद्रव्य सब बाधक जचते हैं उनको त्यागता है। हां जो आत्म-विकास कर चुके आत्मविकासमे चल रहे उनकी भक्ति अवश्य रख रहे, कब तक? जब तक इसके सविकल्पता है और वह भी रख रहा है अविकार स्वरूपके विकासकी भावनासे तो जो मुमुक्षु साधुजन हैं उनका अभिप्राय मात्र आत्मविकासका है, अन्य कुछ लौकिक चाह नही है। ख्याति लाभ पूजा प्रतिष्ठा आदिककी चाहसे वह बहुत दूर है। दुनियामे नाम कराना और उस स्वागत आदिक आदिकमे हर्ष मानना ये सब बहुत तुच्छ बातें है। यह मुनि जनोंमे होती ही नही, तो ऐसे ही मुनिपना एक प्रभुके बादका हल्का पद है। वह तो निर्दोष ही होना चाहिए। जिसको निरखकर श्रावक उपासक यह समझ सके कि मोक्ष मार्ग तो यह है। तो इस तरह इन तीन लिङ्गोमे रहकर यथाशक्ति ये मुमुक्षु आत्मा उपासना करते हैं और मोक्षमार्गमे अपनी प्रगति बनाते हैं।

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पावया भणिया॥ २५॥

(१३७) **सम्यग्दृष्टि मार्गसंयुक्त महिलाओंकी निष्पापता**—अनंतरपूर्व गाथामे बताया था कि स्त्रियोके देहमे, योनिके मध्य भाग कक्ष आदिकमे सूक्ष्म काय वाले जीव निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं, ऐसी स्त्रियोको दीक्षा कैसे हो सकती है? इसपर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है तो क्या स्त्रियां अपना कल्याण नही कर सकती? उसीके समाधानमे यह गाथा कही जा रही है कि स्त्रियोमे जो स्त्री यथार्थ जैन दर्शनकी श्रद्धा करके शुद्ध है अर्थात्

जिसके विपरीत अभिप्राय नही रहा, सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ है और सम्यक्से संयुक्त है, जैन दर्शनके चरणानुयोगके अनुसार अपनी चर्यामे प्रवृत्ति रहती है और आत्मस्वरूपका ध्यान रखती है एव घोर चारित्र तपश्चरण आदिक करके पापरहित है सो वह स्त्री भी पापी नही है, किन्तु आत्मकल्याण करनेमे वह समर्थ है। इस प्रकरणमे यह बात जानना कि मोक्ष मिले इस योग्य तो पुरुषार्थ स्त्रीसे नही बन पाता, फिर भी आत्मकल्याणके लिए यथासंभव उसका पुरुषार्थ बनता है और कितनी ही स्त्रिया तो द्रव्यलिङ्गको छेदकर स्त्रीलिङ्गसे छूट जाती हैं और शीघ्र ही कुछ ही भवमे मनुष्यभव पाकर दिगम्बर मुनि मुद्रामे आत्मध्यानकी साधना करके मोक्षको भी पा सकेंगी। इससे स्त्री भी कल्याणकी अधिकारी है। श्रावककी जो ११ प्रतिमायें बतायी हैं उनका उत्कृष्टसे उत्कृष्ट आचरण कर लेती हैं। ११वी प्रतिमाके जो दो भेद है—(१) क्षुल्लक, (२) ऐलक, अर्जिका ऐलकके रूपमे हैं इतनेपर भी चूंकि स्त्री पर्याय मे हैं, उस ही ढगका देह है तो शिथिलता बनेंती है, इसलिए स्त्रियाँ मोक्षको अधिकारिणी नही हो पाती और मुनिदीक्षा लेनेके योग्य भी नही हैं।

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्ल भाव तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण सकया झाणा ॥ २६ ॥

(१३८) स्त्रियोके समुचित ध्यान न हो सकनेका कारण चित्ताविशुद्धि—इस गाथा मे कहा जा रहा है कि स्त्रियोके ध्यानकी सिद्धि नही है। उनके उत्तम ध्यान नही बन पाता, उसका कारण है कि स्त्रियोके चित्तमे विशुद्धि नही बनती। दूसरा कारण है कि वे स्वभावसे ही शिथिल परिणाम वाली हैं। तीसरा कारण यह है कि मासिकधर्मकी शका उनके सदा बनी रहती है। इस कारण स्त्रियोके उत्तम ध्यान नही बन सकता, उनके चित्त शुद्धि नही होती, ऐसा जो यहाँ कहा है इससे यह जाहिर होता है कि जो मायाचारका अनेको जगह कथन आता है उसके कारण स्त्रियोके चित्तमे शुद्धि नही बनती और उनका मायाचार उस भवमे उनकी प्रकृतिसे ही चल रहा है। इसका तो उदाहरण तक भी दिया है अरहंत भगवान के विहार आदिक वाले कि अरहत भगवानके इच्छा नही है फिर भी उनका विहार होता है, ऐसा ही स्वभाव है, प्रकृत्या होता है, जैसे कि स्त्रियोमे मायाचार प्रकृत्या होता है। स्त्रियोके मायाचारकी प्रकृत्यज्ञतापर दृष्टान्तमे लिया गया है याने मायाचारी करना स्त्रियोके लिए बडी सुगम बात है। उनकी कोई उस भवकी देन है कि जो मायाचारी छल कपटकी बात जरासी देरमे बना सकती हैं। कोई स्त्री मान लो कम छल कपटमे रहती है, न भी करे तो भी भीतरका सस्कार उस भवमे मिटता नही है, इस कारण चित्तकी विशुद्धि उतनी नही हो सकती जो मोक्षकी अधिकारिणी बन सकें। और मोक्षके लायक उत्कृष्ट ध्यान बन सके।

(१३६) स्त्रियोंके समुचित ध्यान न हो सकनेका द्वितीय व तृतीय कारण—स्त्रियो के ध्यान समीचीन न होनेका दूसरा कारण है कि उनके स्वभावसे ही शिथिलता है। शरीर की कोमलता, भावोकी शिथिलता, इससे भी उत्तम ध्यान नही बनता। यद्यपि इसका कुछ अपवाद भी है याने अनेक स्त्रियां ऐसी दृढ परिणाम वाली हुई है कि जो एक आदर्श है फिर भी स्त्री पर्याय जन्य कुछ न कुछ बात अन्दर रहती ही है। जैसे एक चक्रवर्तीकी लडकी जो अगले भवमे लक्ष्मणकी स्त्री विशल्या बनी वह पहले भवमें चक्रवर्तीकी लड़की थी और उसे विद्याधर हर ले गया। पीछेसे सेना भी दौडाई गई तो वह विद्याधर डरके मारे उस कन्याको एक भयानक जंगलमे छोडकर चला गया। उस जगलमे खाने-पीनेका कुछ ढग ही न था और न कोई उस जगलमे ढूंढ़ सकनेमे समर्थ था, वहाँ वह दृढतापूर्वक रही और उपवास आदिक किया, कुछ हजार वर्ष तक ऐसे ही उसको समय गुजारना पडा। एक दिनका संयोग कि बहुत ढुढावे पड रहे थे। तो एक बार स्वयं उसका पिता उसी वनमे पहुचा और तब एक अजगरने उस कन्याको ग्रस लिया था। आधा अग ग्रस चुका था इतनेमे वह पिता पहुंचा और उसने उस अजगरके टुकडे करना चाहा ताकि कन्याको जीवित निकाला जा सके, मगर वह कन्या हाथ उठाकर विनती करने लगी कि आप इसे न मारें, इसको अभयदान दीजिए। तो स्त्रियोमे अनेक दृढ परिणाम वाली स्त्रियाँ भी होती है, पर प्रायः स्वभावतः उनमे शिथिल परिणामकी अधिकता पायी जाती है। दूसरा कारण यह है कि जिससे स्त्रियोको उत्कृष्ट ध्यान की सिद्धि नही होती। तीसरा कारण है मासिकधर्म। उसकी शंका रहती है और उस शंका के कारण, उस ओर भीतरी सस्कारके कारण उनका ऊँचा ध्यान नही बन सकता और उत्तम ध्यान बने बिना केवलज्ञान कैसे होगा और केवलज्ञान हुए बिना मोक्ष कैसे होगा? इससे उनको मुनिदीक्षाका अधिकार नही, फिर भी जैसे पूर्व गाथामे बताया कि जो स्त्री सम्यग्दर्शन से संयुक्त है, तपश्चरण आदिक भी करती है वह पापक नही कही जाती।

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइ सव्वदुक्खाइं ॥२७॥

(१४०) मुनि जनों द्वारा ग्राह्य पदार्थोंमे भी अल्पग्राह्यता—मुनि जन जो आत्माके अर्थी हैं, आगमके अनुसार अपनी प्रवृत्ति रखते है उनकी मुख्य वृत्ति यह है कि ग्राह्य पदार्थ को भी बहुत अल्प ग्रहण करते है। जितना ग्राह्य है उससे भी अल्प ग्राह्य रहते है। जैसे आहार आदिक वस्तु जो कि ग्रहण किए जाने योग्य है उन्हे भी थोडा ही ग्रहण करते है जैसे कि कोई समुद्रमें से प्रयोजन माफिक वस्त्रप्रक्षालन आदिकके लिए थोड़ा ही जल ग्रहण करता है ऐसे ही मुनि महाराज अपना जीवन रखनेके लिए और वह भी जीवन सयमके लिए थोडा

आहार-ग्रहण करते है, उनकी इच्छा दूर हो गई है इससे उसी समय सारे दुःख दूर हो गए, और आगे दुःख मूलत दूर होगे ही ? जिसको सतोष है सुखी वह ही कहलाता है। बाहरी पदार्थ कितने ही किसीके पास हो और संतोप नही है तो वह सुखी नही है। और जिस ही समय किन्ही बाहरी पदार्थोंकी इच्छा हो जाय, तृष्णा हो जाय तो उसका सतोष खत्म है और इस कारण वह दुःखी हो जाता है। वस्तुत तो सतोपी ही सुखी है। तो मुनिके अब इच्छा नही रही, विषय-सम्बधी इच्छा तो रंचमात्र भी नही है, वह देहसे भी विरक्त है इस कारण करे उसे उत्कृष्ट सतोष है। तो ऐसे उत्कृष्ट सतोष वाला साधु जब कभी ग्राह्य आहारको ग्रहण तो वह अल्प ही ग्रहण करता है, क्योकि उसे परम संतोष है। और जो परम सतोषी है वह परम सुखी है। यह सतोष उस मुनिको मिला कैसे ? तो जिनसूत्रके श्रद्धानसे प्राप्त हुआ है।

(१४१) विवेकियोका तृतीय नेत्र परमागम—आगमसे सब जाना अपने आत्माका स्वरूप और अनुभवसे परखा और एक निर्णय बनाया कि हमको तो मात्र आत्मस्वरूपमे मग्न होना है, दूसरा मेरे करने लायक कुछ नही। तो ऐमा आगमका श्रद्धान होनेसे उनका यह दृढ निर्णय हुआ कि जो आगममे बताया है उस विधिसे अपनी चर्या रहे तो मुक्तिका लाभ हो सकता है। तो मुक्तिके मार्गमे विशेषतया लगनेका कारण है आगमका अभ्यास। आगम तो नेत्र बताया गया। जैसे कोई पुरुष नेत्रहीन हो तो वह यथेच्छ गमन नही कर सकता ऐसे ही जो पुरुष आगमहीन है वह आत्मकल्याणके मार्गमे गमन नही कर सकता। देखने वाला पुरुष आँखोसे मार्गको शोधता हुआ बडे आरामसे गमन करता है ऐसे ही आगम का जिसको ज्ञान है ऐसा संत पुरुष हित अहित हेय, उपादेयका भले प्रकार निर्णय करके अपनी चर्यामे प्रवृत्त होता है। तो आगम नेत्र बिना यह जगत अधा है, इस कारण जिनको मुक्तिमार्गमे चलना है उनका यह आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि वे जिनशासनका, आगम का भले प्रकार अभ्यास करें।

(१४२) चारों अनुयोगोके अभ्याससे मार्गकी स्पष्टता—यह आगम चार अनुयोगोरूप है। चार ही अनुयोगोंमे आत्माको स्वभावकी ओर लगनेकी प्रेरणा मिलती है। प्रथमानुयोग मे जब महापुरुषोके चरित्र जाना कि कैसे उनका जीवन चला, कैसे वे इन बाह्य पदार्थोंसे विरक्त हुए और सदाके लिए शान्ति प्राप्त की। खुदके लिए भी उमग जगती है कि मैं भी सर्वसे विरक्त होकर अपने आपमे शान्तिका लाभ लू। करणानुयोगका जब अध्ययन चलता है और कर्मोंकी दशाका बोध होता और उसके अनुसार आत्मामे जो प्रतिफलन है उसकी असारता जानी जाती ये सब कर्मसे भिन्न है तब परभावसे उपेक्षा होकर शाश्वत स्वभावमे उसकी दृष्टि लगती है। चरणानुयोगमे तो वह स्पष्ट अनुभव करता है कि बाह्य पदार्थोंका परिहार

करनेसे व्यक्त विकारका अभाव होता है और इस उपायसे व्यक्त विकारको दूर करनेके पश्चात् इस ही ज्ञानदृष्टिके बलसे अव्यक्त विकार भी दूर हो जाते है। तो चरणानुयोगकी वृत्तिसे उसने अपना हित पंथ निर्णीत किया। द्रव्यानुयोग दो भागोमे विभक्त है—(१) दार्शनिक शास्त्र और (२) आध्यात्मिक शास्त्र, और दोनो ही एक दूसरेके पूरक है, अगर अध्यात्मका लाभ नही है तो दर्शनशास्त्र पढनेका लाभ क्या ? और दर्शनशास्त्रका बोध नही तो अध्यात्म तत्त्वका सयुक्तिक निर्णय नही बन पाता। तो अतस्तत्त्वका भली-भांति निर्णय करके यह जीव आत्मकल्याणमे प्रवृत्त होता है। यह द्रव्यानुयोगके अध्ययनका फल है, तो इस प्रकार आगमके अभ्यासका बहुत बडा महत्त्व है, उसके बिना कुछ भी सिद्धि नही हो सकती। यद्यपि भले ही कुछ मुनियोने जिन्होने विशेष अभ्यास नही किया, केवल अष्ट प्रवचन मात्रका ही जिनको बोध था वे भी संसारसे तिर गए। वे भी जब क्षपक श्रेणीमे आये होगे तो श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम बहुत बढता था। उस समयके लिए आगमका बोध हुआ ही होता और ऐसे विरले ही पुरुष है। बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ तो आगमके अभ्यासका किया जायगा, सो आगमका अभ्यास करके अपने आपको हितपथमे लगाना यह इस जीवनका सर्वोपरि कार्य है।

(१४३) आगमज्ञानके पौरुषमें सूत्रपाहुडकी परमभक्ति—यह सूत्रपाहुडकी अतिम गाथा है। सूत्र मायने आगम। आगमके विषयमे बहुत कुछ वर्णन करके यह द्वादशागमे आगम है और इससे भी कुछ और आगम है जिसे अगबाह्य कहते है इस कारण आगमका बहुत बडा विस्तार है। उस आगमके पूर्ण पाठी श्रुतकेवली होते है। उस आगममें जो विषय है उसके अभ्यासी श्रुतकेवलीके मुखसे जैनाचार्य मुनियोने उपदेश सुना, उसके अनुसार शास्त्र भी रचे गए है और आज जो शास्त्र अध्ययनमे आ रहे है वे सब द्वादशांग वाणीकी वस्तुके विषय है। उस यथार्थ तत्त्वका ज्ञान करके अपनेको अपने अन्तः स्वरूपका मनन करना है। बाह्य पदार्थविषयक समस्त विकल्पोका त्याग करना है। यही इस सूत्रपाहुडकी उत्तम भक्ति है। अन्य आगमसे वास्तविक निवृत्ति प्राप्त नही हो सकती, क्योकि इस आगमसे जैनशासनने वस्तुका स्वरूप यथार्थ बताया है। प्रत्येक पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है। उत्पाद व्यय करना भी स्वभाव है, आत्मामे भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। तो उत्पाद व्यय वाली अवस्थासे नेह लगाकर, उसे ही सर्वस्व शरण समझकर उसमे ही अटक जाना, यह ध्येय न होना चाहिए, किन्तु अपना परिणमन बनाना चाहिए। इन सब बातोके लिए आगमका अभ्यास अध्ययन द्वारा, पठन पाठन द्वारा, स्वाध्याय द्वारा, तत्त्वचर्चा आदिक द्वारा अभ्यास बढाना। यह आगमका अभ्यास हम सबको सन्मार्ग प्रकाशित करेगा।

॥ सूत्रपाहुड प्रवचन समाप्त ॥

अपनी बातचीत

अयि आत्मन् ! तू क्या है ? विचार ! ज्ञानमय पदार्थ !! तेरा इन दृश्योंके साथ क्या कोई सम्बन्ध है यथार्थ ? नही, नही, कुछ भी सम्बन्ध नही। क्यो नही ? यो कि "कोई किसीका कुछ भी परिणमन कर नही सकता।"

मैं ज्ञानमय आत्मा हू, हू, स्वय हूं, इसीलिये अनादिसे हू, मैं किसी दिन हुआ होऊँ, पहिले न था यह बात नही। न था तो फिर हो भी नही सकता।

फिर ध्यान दे—इस नर जन्मसे पहिले तू था ही ! क्या था ? अनन्तकाल तो निगोदिया था। वहाँ क्या बीती ? एक सेकिण्डमे २३ बार पैदा हुआ और मरा। जीभ, नाक, आँख, कान, मन तो था ही नही और था शरीर। ज्ञानकी ओरसे देखो तो जडसा रहा; महासक्लेश ! न कुछसे बुरी दशा। सुयोग हुआ तब उस दुर्दशासे निकला।

पृथ्वी हुआ तो खोदा गया, कूटा गया, ताडा गया, सुरगसे फोडा गया।

जल भी तो तू हुआ, तब औटाया गया, विलोरा गया, गर्म आगपर डाला गया।

अग्नि हुआ, तब पानीसे, राखसे, धूलसे, बुझाया गया, खुदेरा गया।

वायु हुआ, तब पंखोसे, बिजलियोसे ताडा गया, रबर आदिमे रोका गया।

पेड, फल, पत्र जब हुआ, तब काटा, छेदा, भूना, सुखाया गया।

कीडे भी तुम्ही बने और मच्छर, मक्खी, बिच्छू आदि भी। बताओ कौन रक्षा कर सका ? रक्षा तो दूर रही, दवाइयां डाल-डालकर मारा गया, पत्थरोसे, जूतोंसे, खुरोंसे बोचा व मारा गया।

बैल, घोडे, कुत्ते आदि भी तो तू हुआ। कैसे दुःख भोगे ? भूखे प्यासे रहे, ठडो मरे, गर्मियो मरे, ऊपरसे चाबुक लगे, मारे गये।

शूकर मारे जाते है चलते फिरतोको छुरी भोक कर। कही तो जिन्दा ही आगमे भूने जाते हैं।

यह दूसरोकी कथा नही, तेरी है। यह दशा क्यो हुई ? मोह बढाये, कषाय किये; खाने, पीने, विषयोकी धुन रही; नाना कर्म बांधे, मिथ्यात्व, अन्याय अभक्ष्यसेवन किये। बडी कठिनाईसे यह मनुष्यजन्म मिला तब यहाँ भी मोह राग द्वेष विषय कषायकी ही बात रही। तब ··जैसे मनुष्य हुए, न हुए बराबर है।

कभी ऐसा भी हुआ कि तूने देव होकर या राजा, सम्राट, महान् धनपति होकर अनेक सपदा पाई, परन्तु वह सभी सपदायें थी तो असार और क्लेशकी कारण। इतनेपर भी उन्हे

छोड़कर मरना ही तो पड़ा।

अब तो पाया ही क्या ? न कुछ। न कुछमे व्यर्थ लालसा रखकर क्यों अपनी सर्व हानि कर रहे हो ?

आत्मन् ! तू स्वभावसे ज्ञानमय है, प्रभु है, स्वतन्त्र है, सिद्ध परमात्माकी जातिका है। क्या कर रहा ? उठ, चल, अपने स्वरूपमे बस।

तू अकेला है, अकेला ही पुण्य-पाप करता, अकेला ही पुण्य-पाप भोगता, अकेला ही शुद्ध स्वरूपकी भावना करता, अकेला ही मुक्त हो जाता।

देख ! चेत ! पर पर ही है, परमे निजबुद्धि करना ही दुःख है, स्वयमे आत्मबुद्धि करना सुख है, हित है, परम अमृत है।

वह तू ही तो स्वय है। परकी आशा तज, अपनेमे मग्न होनेकी धुन रख।

सोच तो यही सोच—परमात्माका स्वरूप ···उसकी भक्तिमे रह। लोगोको सोच, तो उनका जैसे हित हो उस तरह सोच।

बोल तो यही बोल—शुद्धात्माका गुण गान····इसकी स्तुतिमे रह। लोगोंसे बोल तो हित, मित, प्रिय वचन बोल।

कर तो ऐसा कर जिसमे किसी प्राणीका अहित न हो, घात न हो। अपनी चर्या धार्मिक बनाओ।

तू शुद्ध चैतन्यस्वभावी है; सहज भावका अनुभव कर। जप, जप—शुद्धचिद्रूपोऽहम्।

मुद्रक:—मैनेजर, शास्त्रमाला प्रेस, १८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।
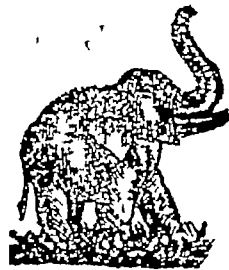
आत्म-कीर्तन

हूं स्वतंत्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।। टेक ।।

मैं वह हूं, जो हैं भगवान, जो मैं हू वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागवितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुखकी खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वय जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहू अभिराम ।।५।।

•••○○•••

❋ आत्म रमण ❋

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हू,
मैं सहजानन्दस्वरूपी हू ।। टेक ।।

हू ज्ञानमात्र परभावशून्य,
हू सहज ज्ञानघन स्वय पूर्ण ।
हू सत्य सहज आनदधाम,
मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।१।।

हू खुदका ही कर्ता भोक्ता,
परमे मेरा कुछ काम नही ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ,
मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।२।।

आऊ उतरू रम लू निजमे,
निजकी निजमे दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त,
मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।३।।

सहजानन्द-साहित्य-सेट

१—अध्यात्मग्रंथ सेट—इसमे आत्मसबोधन सहजानन्दगीता अध्यात्मसहस्री आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचनायें हैं।

२—प्रवचन शीर्ष सेट—जिन ग्रन्थोपर महाराजश्रीने प्रवचन किये हैं उन प्रवचनों के अन्त शीर्षो के ग्रन्थ हैं।

३—अध्यात्मप्रवचन सेट—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, ज्ञानार्णव आदि आर्ष ग्रन्थोंपर व स्व-रचित अध्यात्मसहस्री अध्यात्मसूत्र आदि ग्रन्थोपर प्रवचन किये हैं उन प्रवचनोके ग्रथ इस सेटमे हैं।

४—दार्शनिक सेट—इसमे प्रमेयकमल मार्तण्डअष्टसहस्री पचाध्यायी आप्तपरीक्षा आदि दार्शनिक ग्रन्थो पर किये हुए प्रवचनोके ग्रथ हैं।

५—विद्यासेट—धर्मबोधपूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध, छहढाला टीका आदि प्रारभसे लेकर समयसार तथ्यप्रकाश आदि विशिष्ट अध्ययनके लिये आत्मविद्यार्थियोके लिये उपयोगी ग्रंथ हैं।

६—विज्ञानसेट—इसमे धार्मिक सैद्धान्तिक व लोकोपयोगी ग्रथ हैं।

७—वर्णीप्रवचन सेट—प्रति माह सहजानन्द जी महाराज के प्रवचन इस पत्रिका मे प्रकाशित होते रहते हैं।

८—अग्रेजी अनुवादित सेट—आत्मसबोधन आदि ग्रन्थोका अंग्रेजी भाषामें अनुवाद कराकर प्रकाशित किये जाने वाले ग्रथ इस सेटमे हैं।

९—गुजराती अनुवादित सेट—अध्यात्मसिद्धान्त द्रव्यसग्रह प्रश्नोत्तरी टीका आदि ग्रन्थोको गुजराती भाषामे अनुवाद कराकर प्रकाशित किये जाने वाले ग्रथ इस सेटमे हैं।

१०—मराठी अनुवादित सेट—द्रव्यसग्रह प्रश्नोत्तरी टीका आदि ग्रन्थोका मराठीमे अनुवाद कराकर प्रकाशित होने वाले ग्रथ इसमें हैं।

११—ज्ञानामृत रिकार्ड सेट—आत्मकीर्तन, परमात्मआरती, आत्मभक्ति आदि आध्यात्मिक सहजानन्द भजनोके ससगीत ग्रामोफोन रिकार्ड इस सेटमे हैं।

सम्पादक : पवन कुमार जैन, दुर्गाबाडी, सदर मेरठ

प्रकाशक : खेमचन्द जैन, मन्त्री सहजानन्द शास्त्रमाला, १८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

सहजानन्द शास्त्रमाला प्रेस, १८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।